ओ३म्

वेदों की भूमिका

श्री स्वामी महादेवेन्द्र जी सरस्वती
की अनुग्रह से

लेखक व प्रकाशकः—
रूपकिशोर टण्डन
एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट
सूटरगंज कानपुर

सम्वत् २००६ विक्रमी (सन् १९५२ ई०)

प्रथमबार १०००

मूल्य ॥=)

सिलवर प्रिंटिंग प्रेस, कानपुर।

परिचय कुछ महानुभावों का जिनकी प्रेरणा व प्रोत्साहन से प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित किया जाता है

श्री विशेश्वरदयाल जी श्रीवास्तव रिटायर्ड हैड क्लर्क कूपर एलन कानपुर। एक विचारशील, धर्मानुरागी, कर्मकाण्डरत, अनुभवी सज्जन।

श्री भगवतीप्रसाद जी त्रिपाठी एम० ए०, एल-एल० बी०, विशारद काव्यतीर्थ चेयरमैन ट्रस्ट कमेटी श्री ठाकुर जी महाराज शतरंजी मुहाल कानपुर।

श्री जागेश्वर दयाल जी नरतर बी० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट कवि व सरकारी वकील तथा सदस्य उक्त ट्रस्ट कमेटी।

श्री विद्याधर जी द्विवेदी आयुर्वेद शिरोमणि भिषग्रत्न सदस्य उक्त ट्रस्ट कमेटी।

श्री विजयकुमार जी टण्डन ज्येष्ठ पुत्र श्री रूपकिशोर टण्डन कन्ट्रैक्टर, एक धर्मानुरागी उत्साही नवयुवक सदस्य उक्त ट्रस्ट कमेटी।

श्री मोहनलाल जी ओमर वैश्य वस्त्र व्यवसायी सदस्य व कोषाध्यक्ष उक्त ट्रस्ट कमेटी।

श्री भैरोंप्रसाद उपनाम बनारसी महराज पुजारी व उत्साही कार्यकर्ता श्री रामबख्श सत्संग व श्री राधा वैदिक पुस्तकालय।

श्री किशोर सिंह जी अवकाश प्राप्त रेलवे गार्ड धार्मिक वृत्ति के उदार व अनुभवी सज्जन।

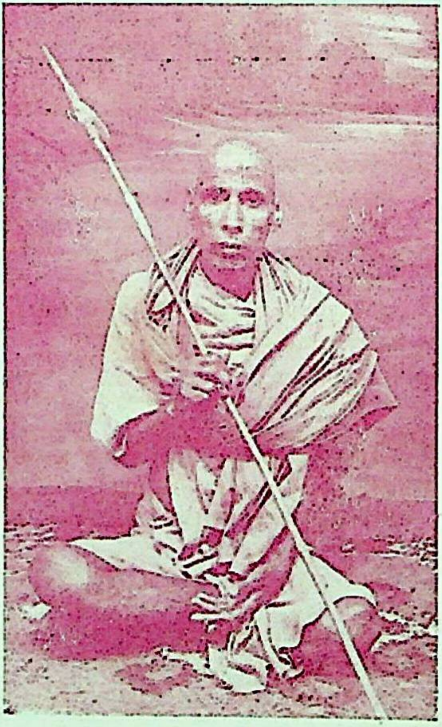
श्री प्रयागनारायण जी निगम रिटायर्ड मास्टर एक सरल व शान्त सज्जन।

श्री अवध बिहारी लाल जी श्रीवास्तव रिटायर्ड मास्टर प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ उदार वृत्ति सज्जन।

श्री जगन्नाथ मेहरोत्रा एम० ए० एक मननशील उदार वृत्ति ज्योतिषज्ञ।

श्री मन्नूलाल कपूर (छोटे मुन्नू बाबू) फीलखाना कानपुर निवासी सज्जन, शान्तिमूर्ति, स्वकार्यदक्ष, उच्च कोटि के वस्त्र व्यवसायी।

वेद, वेदांग एवं षट् दर्शनाचार्य ब्रह्मनिष्ठ

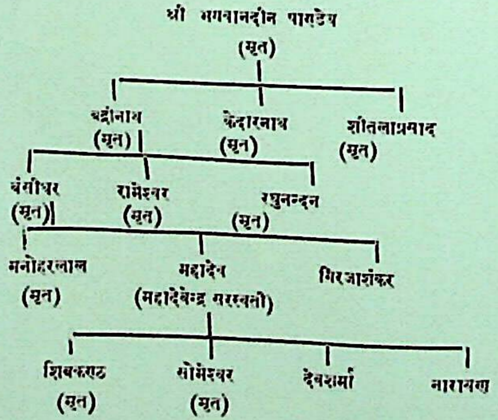


त्यागमूर्ति श्री स्वामी महादेवेन्द्र जी सरस्वती

श्री स्वामी महादेवेन्द्र जी सरस्वती

(पूर्व श्री शास्त्री महादेव पाण्डेय)
ग्राम अमौर जिला कानपुर निवासी
भूतपूर्व प्रधानाध्यापक श्रीराम संस्कृत पाठशाला अमौर
व श्री संस्कृत पाठशाला नृसिंहपुर
कर्म काण्ड व वैदिक सिद्धान्तों के प्रकाण्ड पण्डित
आयुर्वेद, ज्योतिष, उपनिषद् व योग दर्शनादि शास्त्रों के ज्ञाता
श्री 'पञ्चीकरण' व श्री 'यज्ञोपवीत संस्कार' आदि के
टीकाकार व रचयिता
चारों धाम तथा भारतीय तीर्थ स्थानों के भ्रमण कर्त्ता
श्री रामबख्श सत्संग शतरंजी मुहाल के
प्रधानाध्यक्ष तथा संचालक

वंश वृक्ष श्री महादेव पाण्डेय



विषय सूची

'वेदों की भूमिका'

विषय	पृष्ठ संख्या

—※○※—

प्रस्तावना

वेदों का नाम तो मैं अपने बाल्यकाल से ही सुना करता था। अपनी प्राथमिक शिक्षा काल में जब मैं कालपी वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल में (सन् १६०८-१२) तथा ह्यूम्स (गवर्मेंट) हाई स्कूल इटावा में (सन् १६१२-१७) अध्ययन करता था मुझे धार्मिक अध्यापकों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला और उसी काल में मैंने ऐतिहासिक ग्रन्थों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, सुखसागर, प्रेमसागर, सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को पढ़ा जिससे मुझे यह विश्वास हो गया कि वेद ही भारत में प्रचलित प्रायः सभी धर्मों का आधार ग्रन्थ है और यही सबसे प्राचीन धर्म ग्रन्थ कहा जा सकता है किन्तु यत्र तत्र वेदों के वाक्यों को सुनने या देखने के अतिरिक्त यह न जान सका कि वास्तव में वेदों में क्या २ विषय व किस क्रम से हैं क्योंकि उनका हिन्दी भाषा में कोई सरल व ग्राह्य सटीक अनुवाद देखने में नहीं आया। प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद जब मैं कालेज व यूनीवर्सिटी कक्षाओं में शिक्षा प्राप्त करता रहा उस काल में मैंने भिन्न भिन्न विषय के सैकड़ों ग्रन्थ पढ़ डाले जिनके साथ मैंने बहुत से धार्मिक ग्रन्थों को भी पढ़ा किन्तु हिन्दुओं में प्रचलित बहुत से मत मतान्तरों की शृंखलाबद्ध रूपरेखा सिद्धान्तानुसार समझ में नहीं आई

उनके बिखरे हुए सिद्धांतों का प्रथक रूप से विस्तृत वर्णन अवश्य उनके धार्मिक ग्रन्थों में देखने को मिला। अधिकतर सनातनधर्मी परम पूज्य जगतगुरु श्री शंकराचार्य जी महराज द्वारा प्रतिपादित वेदान्त (अद्वैतवाद) सिद्धांत के मानने वाले दिखलाई दिये किन्तु इस सिद्धांत का विकृत रूप में ही प्रयोग होता हुआ समझ में आया। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. (इतिहास) की परीक्षा तथा लखनऊ विश्वविद्यालय से एल एल. बी. की परीक्षा सन् १९२४ में पास करने के बाद मैंने इलाहाबाद हाईकोर्ट में नाम लिखवाकर कानपुर में वकालत शुरू कर दी और कानूनी ग्रन्थों के अवलोकन के साथ धार्मिक विषयों का भी अध्ययन करता रहा। मैंने हिन्दी भाषा में कई सटीक वृहत् व्याख्या सहित कानूनी ग्रन्थ भी लिख डाले जैसे कि भारतीय दण्ड संग्रह (Indian Penal Code पृष्ठ संख्या १५००), कानून मुवाहिदा (Indian Contract Act पृष्ठ संख्या ४००), कानून दादरसी खास (Specific Relief Act पृष्ठ संख्या २००), कानून दिवालिया (Insolvency Act पृष्ठ संख्या ३५०), सेल्स आफ गुड्स ऐक्ट (Sales of Goods Act पृष्ठ संख्या २००), भारतीय कानून शराकत (Indian Partnership Act पृष्ठ संख्या १००) बाल विवाह निषेधक ऐक्ट (Child Marriage Restraint Act पृष्ठ संख्या ४०) आदि और हिन्दी ला जरनल (कानूनी मासिक पत्रिका) का सम्पादन भी बहुत काल तक करता रहा इसके सिल-सिले में मुझे मनुस्मृति आदि धार्मिक ग्रन्थों को समीप से समझने का अवसर मिला। प्रायः सभी कानूनी ग्रन्थों में दी हुई पारिभाषिक

दफाओं को देखकर यह विचार पैदा हुआ कि सम्भव है कि अपने धार्मिक ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धांतों का संग्रह भी कहीं क्रम बद्ध रूप में मिल सके। इसी काल में मुझे स्वर्गीय पं० सत्यदेव जी वेदान्ताचार्य तथा श्री शास्त्री महादेव जी पाण्डेय आदि धार्मिक विद्वानों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिससे यह जान सका कि वेदान्त के सभी मूल सिद्धांत तत्वबोध व कुछ अन्य पुस्तकों में संग्रहीत रूप से दिये हुए हैं और यह पुस्तकें पारिभाषिक ग्रन्थ के रूप में हैं जिसमें वेदान्त के सभी सिद्धांत क्रम बद्ध दे दिये गये हैं तथा इसमें दिये हुए सिद्धांतों का ही वर्णन वेदान्त के अन्य ग्रन्थों में प्रथक प्रथक विशेष विवरण के साथ मिलता है। अन्य सनातनधर्मी मतों को भी इसमें दिये हुए बहुत से सिद्धांत मान्य हैं केवल उनके मूलरूप व प्रयोग विधि में मतभेद है। अध्यात्मिक विषय के अध्ययन में प्रायः ईश्वर, जीव, व प्रकृति इन तीन के सम्बन्ध में की हुई छानबीन ही पाई जाती है कोई इन तीनों की सत्ता प्रथक २ मानता है कोई इनमें से दो को ही प्रथक मानता है तथा कोई इन तीनों को एक ही मानता है समझने के रूपान्तर में भी मतभेद है जिसके कारण बहुत से वाद प्रचलित है जैसे अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद, विशिष्ठाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद आदि। भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में भिन्न भिन्न धर्म चिन्ह, पूजा विधि व व्यवहारिक रूप भी पाया जाता है और प्रायः उसी को लोग उनका प्रथक धर्म सिद्धांत मान बैठते हैं तथा बहुधा यह देखने में आता है कि सिद्धांत में कोई मतभेद न होते हुए भी इन्हीं बातों के कारण भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों में आपसी झगड़े

हैं। मैंने इसी काल में भारतवर्ष के प्रायः सभी मुख्य २ प्राचीन व अर्वाचीन तीर्थ स्थानों तथा ऐतिहासिक व भौगोलिक स्थानों का भ्रमण भी किया तथा पुनीत भारत प्रसिद्ध चारों धामों की यात्रा भी की और इन अवसरों का लाभ उठाते हुए उत्तराखण्ड आदि स्थानों के प्रसिद्ध महात्माओं व सन्यासियों के दर्शन किये तथा उनके सत्संग से लाभ उठाने का प्रयत्न भी किया। धार्मिक जिज्ञासा की तृप्ति के लिये शतरंजीमुहाल ५५/६४ कानपुर स्थित श्री ठाकुर जी महराज के स्थान में जिसका मैं न्यायालय द्वारा चेयरमैन ट्रस्ट कमेटी नियुक्त किया गया था श्री रामबख्श सत्संग के नाम से धर्म प्रचारार्थ व विचार विनिमय के लिये श्री महादेव जी पाण्डेय की अध्यक्षता में सन् १९३७ ई० के लगभग एक सत्संग की स्थापना की तथा उसमें एक धार्मिक पुस्तकालय भी श्री राधा वैदिक पुस्तकालय के नाम से खोल दिया। उक्त सत्संग में धर्मानुरागी महानुभाव प्रायः नित्यप्रति एकत्रित होते हैं तथा उक्त शास्त्री महादेव पांडेय (वर्तमान श्री महादेवेन्द्र जी सरस्वती) की उपस्थिति में धार्मिक विद्वानों का विशेष रूप से जमाव होता है। कुछ सत्संगियों की प्रेरणा व प्रोत्साहन से आदि गुरु श्री शंकराचार्य रचित 'पञ्चीकरण' नामी वेदान्त पुस्तक की सरल व ग्राह्य टीका की गई जिसका प्रकाशन सम्वत १९९८ विक्रमी में कराया गया तथा इन्हीं श्री शास्त्री महादेव जी पाण्डेय द्वारा रचित 'यज्ञोपवीत विज्ञान' नाम की पुस्तक भी प्रकाशित कराई गई। वेदों के विषय पर विचार विमर्श करते समय यह समझ में आया कि उसकी टीकायें तो बहुत सी हैं जिनमें उच्चकोटि के विद्वानों ने

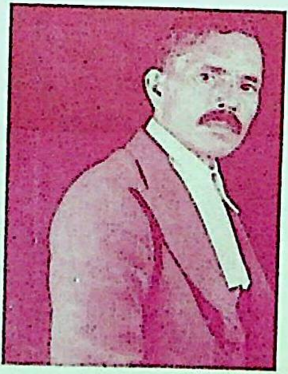
अपने मतानुसार उनका भाष्य किया है। यह भाष्य प्रायः संस्कृत भाषा ही में किये गये हैं और जो भाष्य हिन्दी भाषा में हुए हैं वह इन्हीं के आधार पर हैं तथा उनमें पुरानी परिपाटी के अनुसार ही मंत्रों व ऋचाओं के अर्थ संग्रहीत कर दिये गये हैं वेदों में दिए हुए विषयों का क्रम बद्ध विवरण तथा उनकी हिन्दी भाषा में सरल व ग्राह्य टीका उपलब्ध नहीं है जिससे जन साधारण को उसका सहज ज्ञान हो सके। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने उक्त श्री शास्त्री महादेव जी पांडेय से प्रार्थना की कि वह भूमिका के रूप में वेदों में वर्णित विषय तथा उसको समझने की प्रणाली व उससे सम्बन्धित ग्रन्थों तथा तत्सम्बन्धी जानने योग्य बातें बतलाने की कृपा करें और यदि हो सके तो स्वयं अथवा अन्य वैदिक विद्वानों की सहायता से चारों वेदों का हिन्दी भाषा में सरल अनुवाद भावार्थ के साथ आधुनिक शिक्षा पद्धति के अनुसार करने का प्रयत्न करें।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सन् १६४३-४४ ई० में 'वेदों की भूमिका' का लिखना प्रारम्भ किया किन्तु इसी बीच में यकायक मैं २७ मार्च सन् १६४४ ई० को रक्त पित्त ऐसे भयंकर रोग से ग्रसित हो गया और जीवन की आशा ही न रही इस कारण उक्त विषय पर लिखना रुक गया। कुछ समय पश्चात् उक्त रोग से छुटकारा तो मिल गया किन्तु स्वास्थ्य गिरा ही बना रहा और सन् १६४६ ई० में फिर इसका आक्रमण हुआ तथा उससे निवृत्ति पाने पर गृध्रसी (Scietica) ऐसे भयानक रोग ने आ घेरा जिसके कारण दो वर्ष तक चारपाई पर से हिलना भी

असम्भव हो गया और साथ ही साथ ब्वासीर, श्वास, कोपवृद्धि आदि रोगों ने भी घेरा डालना प्रारम्भ कर दिया। प्रायः उक्त सभी रोग अब तक वर्त्तमान हैं जो अधिकतर सुप्त अवस्था में रहते हैं और समय समय पर जागृत हो उठते हैं तब उनकी रोकथाम का कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ता है। वैद्यक, हकीमी, एलो-पैथिक, होम्योपैथिक, प्राकृतिक, तान्त्रिक तथा अन्य प्रकार की बहुत सी चिकित्सायें इस रोग काल में मुझे कराना पड़ीं किन्तु इन सबकी अपेक्षा मुझे मानसिक चिकित्सा ही सबसे उत्तम प्रतीत हुई और उसी के आधार पर आज भी मैं पूर्ववत् सब सांसारिक व व्यवहारिक कार्यों को करने में समर्थ हूं। कोई भी व्यथा बढ़ने पर शारीरिक कष्ट तो होता ही है किन्तु मानसिक व्यथा (क्लेश) का अति न्यून अनुभव करता हूं। उक्त वर्णित 'वेदों की भूमिका' अब प्रकाशित कर रहा हूं और यदि अवसर मिला तो भविष्य में वेदों की सरल व ग्राह्य टीका हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किये जाने का प्रयत्न करूंगा। आशा है कि पाठकवृन्द उक्त स्वानुभव के साथ दिये हुए आत्म वर्णन की ओर ध्यान न देते हुए लक्षित विषय पर ही ध्यान रक्खेंगे तथा अपने योग्यतापूर्ण स्वानुभूत विचारों से भविष्य के प्रकाशन में समुचित सहायता प्रदान करने की कृपा करेंगे।

तारीख २६ मार्च सन् १६५२ ई०
चैत्र शुक्ल १ सम्वत् २००६ वि०

विनीत
रूपकिशोर टण्डन



जनसेवी

कालपी निवासी कानपुर प्रवासी

श्री रूपकिशोर टण्डन एम. ए., एल. एल. बी. एडवोकेट

भूतपूर्व चेयरमैन श्री ठाकुर जी ट्रस्ट कमेटी

संस्थापक व संचालक

श्री रामवन्श सत्संग व श्री राधा वैदिक पुस्तकालय

५५/६४ शतरंजी मुहाल

पुस्तकालय व वाचनालय तथा सत्संग व स्वाध्यायमण्डल

११/३१८ सूटरगंज कानपुर।

वंशवृक्ष श्री रूपकिशोर टण्डन एडवोकेट

श्री ठाकुरदयाल टण्डन (उपनाम टकू बाबा) (मृत)

- गणेशप्रसाद (मृत)
  - बच्चूलाल (मृत)
    - रामगोपाल (भार्या गिन्दादेवी) (मृत)
      - लक्ष्मणप्रसाद (मृत)
      - रूपकिशोर (भार्या सुकुमारीदेवी)
        - विजयकुमार (भार्या ब्रजरानीदेवी)
          - सुधीरकुमार
          - शीलादेवी
        - राजकुमार (मृत)
        - विपिनकुमार
        - हरीकुमार
      - गुलाबदेवी
      - श्यामादेवी
      - केशवनन्द
      - श्यामस्वरूप (मृत)
      - कमलादेवी
      - बाँकेबिहारी
      - कन्हैयालाल (मृत)
      - विमलादेवी
    - रघुनन्दनलाल (मृत)
    - दुलारी देवी (मृत)
    - मुन्नूलाल (मृत)
    - बुलाकी लाल
  - मोहनदेवी (मृत)
  - जसोदादेवी (मृत)
  - दुर्गादेवी (मृत)
  - दिव्वनदेवी (मृत)
  - पुत्तू लाल (मृत)
- हजारीलाल (मृत)
- गुलजारीलाल (मृत)

ॐ

वेदों की भूमिका

वेद सम्बन्धी प्रारम्भिक विचार

भारतवर्ष में विरले ही व्यक्ति ऐसे होंगे जिनके कानो तक 'वेद' शब्द न पहुँचा हो किन्तु साथ ही साथ वेदों के तात्पर्य को भली भांति जानने वाले व्यक्ति भी गिने चुने ही निकलेंगे। हिन्दू धर्मावलम्बियों में कुछ सम्प्रदायों को छोड़कर अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो वेदों को केवल आदि ग्रन्थ ही नहीं किन्तु उनको ईश्वर कृत अथवा अपौरुपेय स्वीकार करते हैं। ऐसा होते हुए भी यदि यह प्रश्न पूछे जावें कि यह वेद क्या है और उनमें क्या विषय है तथा वह क्यों माननीय है तो इनका उत्तर देना जनसाधारण के लिए तो दुष्कर है ही किन्तु विद्वान व धर्माचार्य भी इनके सन्तोपजनक उत्तर नहीं दे सकते हैं। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या वेदों का जानना वास्तव में असम्भव है अथवा कठिन मात्र ही है। वैदिक धमावलम्बियों के लिए असम्भव कहना तो निर्मूल सी बात है किन्तु कठिन होने की बात प्रत्यक्ष ही में दिखलाई देती है। यह कठिनता ऐसी

नहीं है जो आधुनिक साधनों द्वारा दूर न की जा सके। साधारणतया वेदों को मानने वालों की यह धारणा है कि सृष्टि के आदि में वैदिक ज्ञान का प्रकाश हुआ था अथवा वेद आदि काल में आत्मा से निकलने वाले शब्दों की प्रतिध्वनि है और उसमें जीव मात्र को नियम बद्ध करने तथा उनके कल्याण कारी नियम बनाये गये हैं। ऐसी दशा में मनुष्य मात्र के लिए वैदिक ज्ञान स्वभावतः सम्भव होना प्रतीत होता है किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता है इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि उन नियमों को बतलाने वाले यन्त्र का प्रयोग उचित रूप से नहीं किया जाता है दूसरे शब्दों में यह कि स्वाभाविक नियमों का पालन न करते हुए अपनी आत्मा के आदेशों की अवहेलना की जाती है। दूसरे यह कि वैदिक ज्ञान को कण्ठाग्र करने की प्रणाली नष्ट हो गई है तथा कुल रीतियों में उनका पालन उठ गया है। तीसरे यह कि जिस भाषा में वेदों का ज्ञान सबसे पहले प्रकट हुआ था वह भाषा अब देश भाषा या मातृ भाषा के रूप में प्रयोग नहीं होती है। स्वत्व से तो वेद पर जीव मात्र का अधिकार है किन्तु योग्यता से जिन कुलों में कुल परम्परा से वेद नहीं पढ़े गये वह उसके ज्ञान से वंचित हैं। और भी बहुत से कारण हैं जो सब दूर किये जा सकते हैं यदि अपने यहां के धर्माचार्य व विद्वान जन थोड़ा सा भी ध्यान इस ओर देवें।

लड़कपन से मैं भी वेदों के नाम को श्रद्धा पूर्वक सुनता चला आया हूं किन्तु उनके वास्तविक ज्ञान का साधन जो अपने

अनुकूल हो अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है। यह बात अवश्य है कि वेदों के सम्बन्ध में जानने की इच्छा बराबर हृदय में बनी रही है और इधर कुछ वर्षों के सत्संग व स्वाध्याय से यह इच्छा उत्कट अभिलाषा के रूप में परिणित हो गई है। वेदों के सम्बन्ध में जो टीकाएं अब तक प्रकाशित हुई हैं वह या तो ऐसी संस्कृत भाषा में हैं जिनका समझना साधारण संस्कृत जानने वालों के लिए ही दुष्कर है फिर साधारण जनता के लिए तो कहना ही क्या है और साथ ही साथ उन टीकाओं में से कोई सर्वांग पूर्ण भी नहीं कही जा सकती है और सर्वांग पूर्ण हो भी नहीं सकती हैं क्यों कि यह अधिकतर वेदों के जानने वालों के ही लिए लिखी हुई प्रतीत होती हैं। अन्य भाषाओं में जो टीकाएँ या अनुवाद लिखे गये हैं वह भी उक्त टीकाओं के आधार पर ही हैं। यही नहीं कि वह सर्वांग पूर्ण न हों किन्तु उनकी भाषा भी ऐसी है जो साधारणतया बोली जाने वाली भाषा से भिन्न सी ज्ञात होती है और उनसे वास्तविक भाव व्यक्त नहीं होता है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए यह विचार उत्पन्न हुआ कि वेद सम्बन्धी सर्वांग पूर्ण ज्ञान के साधन समझने का प्रयत्न किया जावे और यदि हो सके तो साधारण बोलचाल की भाषा में वेद सम्बन्धी उस ज्ञान को सर्वसाधारण के सम्मुख रक्खा जावे। शास्त्री महादेव पांडेय जो एक उच्च कोटि के दार्शनिक विद्वान हैं और संस्कृत भाषा तथा तत्सम्बन्धी विषयों का अच्छा ज्ञान रखते हैं। मेरे उक्त प्रयास से पूर्णतया

सहमत हैं। उनकी सहायता व सहानुभूति से वैदिक विषय सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

सबसे प्रथम वेद व वेद सम्बन्धी उन ग्रन्थों पर प्रकाश डाला जावेगा जो उसके पूरक समझे जाते हैं तथा उसके पश्चात् उन बातों को बतलाया जावेगा जिनको ध्यान में रखते हुए वैदिक भाषा का अर्थ लगाया जाना आवश्यक होता है क्योंकि बहुधा एक ही शब्द के कई अर्थ होते हैं और उनका प्रसंगानुसार अर्थ न लगाया जाने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है और साथ ही साथ शब्द के उच्चारण तथा प्रयोग स्थान के कारण भी शब्द का अर्थ कुछ का कुछ हो सकता है। तत्पश्चात् वेद संहिता का भाषानुवाद दिया जावेगा। अनुवाद करते समय शब्द व ग्रन्थ सम्बन्धी उक्त विचारों पर विशेष ध्यान रक्खा जावेगा तथा शब्दार्थ को देते हुए भावार्थ को भी ऐसी भाषा में सामने रक्खा जावेगा जिसमें मूलग्रन्थ व उसके भाव साधारणतया व्यक्त हो सकें।

प्रवेश

वेद चार हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद। यह चारों वेद अपने उपवेद तथा अंग व उपांगों सहित पूर्ण माने जाते हैं। उपवेद भी चार ही हैं आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, तथा स्थापत्यवेद [जिसे शिल्प शास्त्र भी कहते हैं]। अंग छै माने जाते हैं शिक्षा, व्याकरण, छन्द

निरुक्त, ज्योतिष, तथा कल्प। और षट्दर्शनादि ही को उपांग कहा जाता है। षट्दर्शन क्रमशः यह हैं पूर्वमीमांसा, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, तथा उत्तरमीमांसा या वेदान्त।

प्रायः वेदों के दो भाग माने जाते हैं एक तो मंत्र भाग जो ईश्वर कृत कहा जाता है तथा दूसरा ब्राह्मण भाग जो उनकी व्याख्या के रूप में है। इस ब्राह्मण भाग के भी ३ हिस्से होते हैं एक ब्राह्मण जिसमें अधिकतर कर्मकाण्ड का सम्बन्ध है दूसरा आरण्यक व तीसरा उपनिषद्। आरण्यक भाग उपासना विशेष से सम्बन्ध रखता है तथा उपनिषद् भाग ज्ञान विशेष से।

वेद संहिता को जानने से पहिले उसके अंग का कुछ न कुछ ज्ञान होना आवश्यक है क्यों कि बिना अंग के अंगी जाना नहीं जाता। अतः वेदों के अंग का दिग्दर्शन कराने के बाद वेद संहिता के अध्याय, काण्ड, सूक्त, मंत्र, देवता, ऋषि आदि के सम्बन्ध में कुछ बतलाने के बाद वेद संहिता का अनुवाद किया जावेगा।

ईश्वर ने सृष्टि को बनाकर उनमें पदार्थों का ज्ञान व प्रयोग वेदों द्वारा प्रकट किया था। इसी प्रयोग विधि को धर्म कहते हैं और यही ईश्वरीय आज्ञा है। इसीलिए प्राचीन ग्रन्थों में जैसे मनुस्मृति आदि में वेद ही धर्मवाक्य थे। कुछ काल बाद जब वेदों का ज्ञान ठीक ठीक समझ में न आने लगा तब उनके समझने के लिये ऋषियों ने अंग आदि के ज्ञान प्राप्त करने की पहिले आज्ञा दी इसीलिए अब बाद के ग्रन्थों में धर्म या ज्ञान के स्थानभूत

चौदह विद्यायें बतलाई गईं हैं जिनको कि अंग व उपांग कहते हैं। इन चौदह विद्यायों से तात्पर्य चौदह ग्रन्थों से नहीं है किन्तु चौदह प्रकार के विषयों से है जिनका ज्ञान होना आवश्यक ही है। उक्त चौदह विद्यायें यह हैं:—छै अंग, चार उपांग, व चार वेद। वेदों व अंगों का नाम ऊपर दिया जा चुका है। उपांग यह हैं:—

(१) मीमांसा जिस के दो हिस्से हैं एक धर्म मीमांसा व दूसरी ज्ञान मीमांसा धर्म मीमांसा को केवल मीमांसा या कर्म का विचार कहते हैं और ज्ञान मीमांसा को वेदान्त कहते हैं।

(२) तर्क शास्त्र—इसके भी दो भाग हैं एक न्याय तथा दूसरा वैशेषिक। तर्क को ही न्याय कहते हैं और वैशेषिक को पदार्थ विज्ञान कहते हैं।

(३) धर्म शास्त्र—इसके अन्तर्गत सांख्य योग व स्मृतियां आ जाती हैं।

(४) पुराण—इसमें पुराण व इतिहास आ जाते हैं। पुराण का अर्थ है कल्पित निबन्ध के साथ सृष्टि के सर्गादि पांच बातों का या दश बातों का वर्णन और इतिहास वह है जिसमें निश्चित रूप से होने वाली घटनाओं अर्थात् आख्यायिकों का वर्णन होते हुए धर्म अर्थ काम मोक्ष का उपदेश होवे। याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों में उक्त चौदह विद्याओं का उल्लेख हुआ है। उपवेद की गणना वेदों के साथ ही मान ली गई है किन्तु जो लोग उपवेदों

की प्रथक गणना करते हैं वह १४ के स्थान पर १८ विद्याओं को मानते हैं इसका उल्लेख स्मृतियों में मिलता है।

(अंग)–शिक्षा

पहिला अंग शिक्षा है क्योंकि शिक्षा के विना भाषा का ज्ञान हो ही नहीं सकता है और यही शिक्षा अंग अन्य भाषाओं से संस्कृत भाषा में विशेषरूप से है जिससे यह ज्ञात होता है कि किसी एक अक्षर के वाद उसके वाद वाला अक्षर ही क्यों पढ़ा जाता है और जिससे अक्षरों के उच्चारण स्वर स्थान आदि का वोध होता है जो किसी भाषा में नहीं है। इसकी उपमा नासिका से दी गई है क्योंकि यह भाषा की नाक है। जैसे कि विना नाक के सांस लेना (जीवन) सम्भव नहीं और शरीर की शोभा भी नहीं रह सकती है इसी प्रकार शिक्षा के ज्ञान के विना भाषा का जीवन व शोभा सम्भव नहीं है। शिक्षांग में तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार इन बातों का ज्ञान होना चाहिये।

१ वर्ण (अक्षर)—कौन २ हैं व कितने प्रकार के हैं व किस क्रम से हैं।

२ स्वर (ध्वनि)—ऊँचा, नीचा, व मध्यम तीन प्रकार का होता है।

३ मात्रा—लघु व गुरु दो प्रकार की होती हैं अथवा इसे ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत तीन प्रकार की मानते हैं।

४ वल—यह दो प्रकार का होता है। एक स्थान भेद से दूसरा प्रयत्न भेद से जैसे अपने अपने स्थान के कारण सबकी वलवत्ता

होती हैं इसी प्रकार अक्षरों के स्थान कंठ, जिह्वा आदि बतलाये गये हैं और प्रयत्न जैसे कि उच्चारण के समय कंठ व मुख की बनावट तथा जिह्वा का छूना किस प्रकार होता है।

(५) साम (समता)—अर्थात उच्चारण विधि जैसे कि शब्दों का जल्दी जल्दी या धीरे २ उच्चारण करना आदि।

(६) सन्तान (फैलाव)—अर्थात किन किन वर्णों के मिलने से वर्णों का उच्चारण या रूप किस प्रकार बदल जाता है।

वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम व सन्तान इतनी बातों के ज्ञान का नाम शिक्षा है।

व्याकरण

दूसरा अंग व्याकरण है—इसमें पुरुष, वचन विभक्ति काल कारक संज्ञा क्रिया आदि बातों का ज्ञान होना चाहिये। इसके ज्ञान के लिए यजुर्वेद संहिता ही में एक मंत्र दिया हुआ है—चत्वारिशृंगा इत्यादि जिसमें कि व्याकरण की सभी बातें आ जाती है। व्याकरण की उपमा मुख से है जैसे बिना मुख के बोला नहीं जा सकता इसी प्रकार बिना व्याकरण के कोई भाषा नहीं बोली जा सकती है।

निरुक्त

इसी दूसरे अंग व्याकरण के साथ साथ तीसरा अंग निरुक्त कहा जाता है जिसकी उपमा कान से है (मुख से बोलना व कान से सुनना)। निरुक्त में शब्द की विशेष व्युत्पत्ति और अर्थ

रहता है। निरुक्त को साधारण तौर पर वेदों का कोष कहा जा सकता है लेकिन कोष से इसमें विशेषता यह है कि कोष में केवल पर्याय (दूसरा नाम) रहते हैं किन्तु निरुक्त में उसी शब्द से धातु प्रत्यय आदि के द्वारा अक्षरों से शब्द के अर्थ निकालने का प्रयत्न किया जाता है।

ज्योतिष

चौथा अंग ज्योतिष है जिसका अर्थ है प्रकाशदार या झलक वाले पदार्थों का जानना या इस प्रकार से ज्ञान हो जाना कि पदार्थ प्रत्यक्ष सा हो जावे। इसकी उपमा नेत्र के साथ दी जाती है। इसके बिना कोई पदार्थ भली प्रकार देखा नहीं जा सकता है! आजकल इसके दो हिस्से माने जाते हैं एक फलित व दूसरा गणित। वस्तुतः गणित ही प्रधान है और उसका परिणाम ही फलित है। इसमें भूगोल खगोल को जानने के लिये व उन पदार्थों की गति बिगति जानने के लिये अंकगणित, बीजगणित व रेखागणित इनका वर्णन है। भूगोल में जल स्थल व उनके विभागों का वर्णन मिलता है तथा खगोल में ग्रह नक्षत्र तारा आदि व सूर्य चन्द्र का वर्णन है। उसमें कौन कितने बड़े व समष्टि व्यष्टि में क्या परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं तथा लोक लोकान्तर क्या व कहां हैं इसका वर्णन है।

छन्द शास्त्र

पांचवां अंग छन्द शास्त्र है। इसकी उपमा पांव से है

जैसे कि पांव के बिना कोई नहीं चल सकता है इसी प्रकार इसके बिना कोई भाषा में नहीं चल सकता है क्योंकि भाषा तीन भागों में विभक्त रहती है पद्य, गद्य, व गीत। इनका ज्ञान छन्द शास्त्र से ही होता है।

कल्प

छठवां अंग कल्प शास्त्र कहलाता है जिसे विधि शास्त्र व यज्ञ शास्त्र कहते हैं। यह दो विभागों में बंटा है एक श्रौत व दूसरा स्मार्त अर्थात् समष्टि को लेकर करना व व्यष्टि को लेकर करना (जैसे कि वर्ण व्यवहार समष्टि के साथ है और आश्रम व्यवहार व्यष्टि [शरीर] के साथ है) इसकी उपमा हाथ से है। जैसे बिना हाथ के कोई व्यवहार या कर्म नहीं हो सकता है इसी भांति इस अंग के बिना कोई भी सामाजिक व पारलौकिक अथवा लौकिक इत्यादि कर्म नहीं हो सकते हैं। श्रौत सूत्रों में बड़े बड़े अश्वमेध, वाजपेय, राजसूय आदि यज्ञों की विधि बतलाई गई है। स्मृति में सोलह संस्कार और घर गृहस्थी के व्यवहार बतलाये गये हैं। बहुत सी स्मृतियों का अन्तर्भाव इन कल्प सूत्रों के साथ है। ऐसा भी किसी किसी का मत है कि यह अंग सब अंगों से सम्बन्ध रखने वाला तथा आवश्यक और सबसे पीछे का है क्योंकि और अंगों का बिना इसके होना कठिन है। इसके बिना और अंगों के ज्ञान की आवश्यकता निरर्थक होती है इसी से इसे कल्प शास्त्र या क्रिया शास्त्र अथवा समर्थ शास्त्र कहा गया है।

इस प्रकार यह छै अंग होते हैं। इनके भीतर घुसकर यदि अच्छे प्रकार विचार किया जावे तो इनकी व्याप्ति सभी भाषा संसार या संसार की भाषाओं में है। मूल में सब भाषायें इन्हीं अगों से अपभ्रंश रूप से निकली भी हैं ऐसा अनुमान ही नहीं किन्तु प्रत्यक्ष भी है।

(उपांग) तर्कशास्त्र

उपांग-उपांगों में पहले तर्कशास्त्र लेना चाहिये जिसके दो भेद बतलाये गये हैं। एक वैशेषिक व दूसरा न्याय (इन दोनों का केवल न्याय नाम भी कहा गया है)। तर्क का अर्थ पदार्थ होता है अर्थात जो तर्कना किये जाते हैं। इस प्रकार से पदार्थ ज्ञान जिसके द्वारा होता है उसे वैशेषिक अर्थात विशेष रूप से पदार्थों को बतलाने वाला शास्त्र कहते हैं। इसमें पहले पदार्थों के दो विभाग किये गये हैं एक भावात्मक व दूसरा अभावात्मक । भावात्मक के छै भेद हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष व समवाय अभावात्मक के चार भेद हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, व अत्यन्ताभाव। इस वैशेषिक शास्त्र का सिद्धांत है कि बिना इनके अच्छे प्रकार के ज्ञान के धर्म नहीं हो सकता है जिस धर्म से कि हम अभ्युदय अर्थात ऐहिक ऐश्वर्य और निश्रेयस अर्थात् आमुष्मिक कल्याण प्राप्त कर सकते और वह वेद वचनों से ही जाना जाता है। अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि धर्माचरण करते करते इन

पदार्थों का ज्ञान होता है और अन्त में मुक्ति मिलती है। दूसरा तर्कशास्त्र है जिसे न्याय कहते हैं उसमें तर्क शब्द का अर्थ निर्णय करके किसी विशेष विषय या सिद्धान्त में पहुँचना होता है इसलिए इसमें पहिले पदार्थों की संख्या देकर और प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि प्रमाणों के द्वारा पदार्थ निर्णय किया जाता है। प्रमाण बहुत प्रकार के होते हैं यह भी इसमें वर्णित है। मुख्य प्रमाण ग्यारह माने गये हैं। यों तो और भी बहुत से प्रमाण हैं जिसमें ग्यारह ये हैं—१. प्रत्यक्ष प्रमाण जिसको चारवाक व नास्तिक सभी मानते हैं। २. अनुमति जिसे कणाद व बौद्ध विशेष मानते हैं। ३—उपमिति जिसे कि कोई कोई नैयायिक मानते हैं। ४. शब्द जिसे कि सभी नैयायिक मानते हैं। ५. अर्थापत्ति जिसको प्रभाकर आदि ने माना है। ६. अनुपलब्धि जिसे भट्टपाद ने माना है। यही छै प्रमाण प्रायः सभी वेदान्ती मानते हैं। ७ साम्भविक प्रमाण है। ८ ऐतिह्यक प्रमाण है। यह दो प्रमाण पौराणिक व ऐतिहासिक लोग अधिक मानते हैं। ९. चैष्टिक प्रमाण है जिसे तान्त्रिक तथा राजकीय लोग मानते हैं। १०. आत्मतुष्टि प्रमाण है जिसे धार्मिक लोग मानते हैं। ११. जनश्रुति प्रमाण है। यह लोकोक्ति या कहावत है जिसे आम जनता मानती है। इसी प्रकार और भी प्रमाण हैं जैसे परम्परा, सांकेतिक इत्यादि। इन प्रमाणों द्वारा ही सिद्धान्त या विषय का प्रमाणित करना या उपपत्ति देना इस शास्त्र का फल है।

योग

दूसरा उपांग योग माना जाता है जिसमें भी दो हिस्से हैं एक ज्ञान प्रधान सांख्य व दूसरा अभ्यास प्रधान योग है। सांख्य में पूर्वा पर पदार्थों का क्रम दिया गया है कि यह कैसे हुए व कहां से हुए और इनके जानने से मनुष्य को क्या लाभ है क्योंकि सभी दुःखों की निवृत्ति चाहते हैं परन्तु दुःखों की निवृत्ति बिना उनके मूल को जाने नहीं हो सकती है। सर्व दुःखों की निवृत्ति ही को पुरुषार्थ कहते हैं। ऐसी ही बातों के साथ इसमें प्रकृति व पुरुष आदि मूल पदार्थों का वर्णन है। योग में अभ्यास के द्वारा समाधि तक पहुँचकर यह जान लेना कि किसका क्या कहना है और वह कहां तक सत्य है और लोक लोकान्तर स्थूल व इन्द्रिय अन्तःकरण आदि सूक्ष्म पदार्थ क्या और कैसे हैं इनका प्रत्यक्ष कर लेना यह योग शास्त्र है।

योग के तीन प्रकार हैं—१. साधारण योग जिसके आठ अंग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि, । यह मन्दाधिकारियों के लिये कहे गये हैं। इन्हीं अंगों में पहिले के दो अंग धर्म कहे जाते हैं जिनके दस भेद हैं। इसी से इन दसों को सेवन करना सभी धार्मिकों का प्रथम काम है तभी आसन इत्यादि भी बन सकते हैं व अन्तःकरण शुद्ध होकर प्रकृति पुरुष का ज्ञान भी प्राप्त हो सकता है। इसी से इस अंग का नाम चौदह विद्याओं

के अन्दर धर्म शास्त्र आया है जिसे कि आजकल प्राय: केवल स्मृति ही अर्थ किया जाता है। वस्तुत: धर्म शास्त्र के भीतर यह दोनों दर्शन व स्मृतियां मानी जाना चाहिये क्योंकि स्मृतियों का बहुत सा अंश कल्पांग में भी जाता है और कुछ अंश धर्म-शास्त्र में रहता है।

२-क्रिया योग—इसमें तप, स्वाध्याय. व ईश्वर प्रणि-धान का वर्णन है। यह पर्याय से कायिक, वाचिक व मानसिक क्रियायें हैं जिनसे चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। यह मध्यम अधिकारियों के लिये है।

३-तीसरा (योग का) भेद उत्तमाधिकारियों के लिये है जिसमें केवल अभ्यास व वैराग्य के द्वारा चित्त निरोध करना लिखा गया है।

इन्हीं के साथ २ कुछ पदार्थ विज्ञान व कर्म गतियों का भी इसमें वर्णन है जो स्मृतियों में भी पाया जाता है। स्मृतियों में यम, नियम, आसन व प्राणायाम इन चार पर विशेष जोर दिया गया है और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि के लिये कुछ वेदान्ति प्रधान ऋषियों का कहना है कि यह ज्ञान ही के साथ करना चाहिये। योगी प्रधान ऋषियों का कहना है कि इनका ज्ञान तो होना ही चाहिये परन्तु अभ्यास के साथ ही यह किये जावें। अभ्यास वाली समाधि नियत देश व काल तक के लिये होती है और ज्ञानकी समाधि देश कालातीत होती है। इतना धर्मशास्त्र (यानी स्मृति) और योग का विशेष भेद है

जिससे कोई योग को धर्म शास्त्र कहते हैं और कोई नहीं भी कहते हैं। वस्तुतः चौदह विद्याओं में धर्मशास्त्र और योग एक ही उपांग है।

मीमांसा

तीसरा उपांग मीमांसा है। इसके दो भेद हैं एक कर्म मीमांसा व दूसरा ज्ञान मीमांसा। कर्म मीमांसा में इस प्रकार की क्रिया विधि का वर्णन है कि कर्म करना चाहिये क्योंकि यह वेदों की आज्ञा है, वह कैसे करना चाहिये, व वेद क्या हैं या वेदों में कहे हुए यज्ञ किस प्रकार किये जावें व उनके कौन कौन अंग हैं उनके साधारण फल क्या हैं उनके न करने में क्या प्रत्यवाय (दोष) होते हैं इत्यादि। इसी से उसे कर्म मीमांसा कहते हैं। इसकी व्याप्ति अधिकांश यज्ञ फल स्वर्ग लोक तक या देवताओं को मन्त्रात्मक ही मानकर केवल कर्म सिद्धांत तक ही है। इसमें ज्ञान की प्रधानता विशेष रूप से कुछ भी नहीं दी गई है व सन्यास मार्ग का कुछ भी वर्णन नहीं है। आजीवन सबको कुछ न कुछ कर्म करना ही चाहिये बिना क्रिया के शरीर की कोई अवस्था ही नहीं होती है इसलिये प्रधान रूप से कर्म का महत्व बतलाया है तथा इसी कारण इसे कर्म मीमांसा कहते हैं। ज्ञान मीमांसा जो इस उपांग का दूसरा भेद है यह बतलाता है कि कर्मों का कर्त्ता कौन है, और उस कर्त्ता का क्या रूप है, कर्मों का आरम्भ किससे कहां से व कैसे होता है। यह तर्क उठाकर पहिले ब्रह्म का वर्णन किया है और इसी ब्रह्म के साथ साथ संसार (प्रकृति) व जीव

तथा पुरुष इनके परस्पर सम्बन्ध व व्यवहार भेद अभेद आदि का उपनिषद काण्ड के द्वारा निश्चय किया गया है इससे इसे ही वेदान्त अर्थात वेदों का मूल सिद्धांत व अन्तिम सिद्धान्त कहते हैं।

यही छै उपांग षड् दर्शन के नाम से विख्यात हैं:—दोनों तर्क शास्त्र, दोनों योग तथा दोनों मीमांसा।

पुराण

चौथा उपांग पुराण कहा जाता है। इसके दो भेद एक पुराण व दूसरा इतिहास। पुराण शब्द का अर्थ अमर कोष में पांच लक्षण वाला लिखा है। वह पाँच लक्षण यह हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंश्यानुचरित। सर्ग—सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन; प्रलय—सृष्टि संहार अथवा प्रलय का वर्णन; वंश—राजाओं के वंशों क वर्णन मन्वन्तर—जो ब्रह्मा के एक दिन में चौदह बीता करते हैं उनका वर्णन मन्वन्तरों के भीतर मनु राजा, उनके लड़के, उनके ऋषि, उस समय के इन्द्र इत्यादि की बातें रहती हैं; वंश्यानुचरित—वंश में जो विशेष व्यक्ति होते हैं उनके चरित्रों का वर्णन। यह पांच लक्षण पुराण के कहे गये हैं। परन्तु यह पौराणिकों के मत में लघुपुराणों के हैं न कि यह महापुराणों के। महापुराण—वह कहलाते हैं जिनमें दस लक्षण हों जैसे कि भागवत के द्वैदशक में यानी दूसरे स्कंध

के दशवें अध्याय के पहिले श्लोक में कहा गया है—अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषण मूतयः मन्वन्तरे शानु कथा विरोधो निरोधोमुक्ति राश्रयः। सर्ग—सूक्ष्म तत्वों का होना; विसर्ग—स्थूल तत्वों के विषय का वर्णन; स्थान—भगवान का अवतार लेकर दुष्टों को मारना; पोषण-साधु रक्षा (इन दो लक्षणों से संसार की स्थिति यानी मध्यावस्था का वर्णन है); ऊति—कर्म व कर्म वासनाओं का वर्णन; मन्वन्तर—मन्वन्तरों की कथा; ईशानुकथा—अवतारों के चरित्र, निरोध-प्रलय, मुक्ति, मोक्ष, आश्रय—सबका आधारभूत एक परम तत्व का विचार। ऐसे दश लक्षण वाले महापुराण होते हैं और यही वर्णन बड़े बड़े पुराणों में मिलता है।

पुराण व इतिहास में अन्तर यह है कि पुराणों में जो कथायें होती हैं वह प्रबन्ध कल्पना प्रधान होती हैं अर्थात् उनमें काल्पनिक कथाओं का भाग अधिक होता है जो साहित्य के अलंकार आदि विषय से व लक्षणादि वृत्ति आदि देखने में कुछ और वास्तव में कुछ और अर्थ रखता है।

इतिहास—उसे कहते हैं जो आख्यायिका (किसी देश काल में संघटित होने वाली घटना) के अनुसार किसी विशेष व्यक्ति का आधार लेकर फिर धर्म अर्थ काम मोक्ष आदि विषयों का वर्णन बड़े सुचारु रूप व प्रत्यक्ष घटित घटना

से दिखलाया जाता है। जो लोग पुराणों को नहीं मानते हैं उनको वेद के समझने में कहीं कहीं बड़ी अड़चन आ जाती है इसी से महाभारत में लिखा हुआ है कि 'इतिहास पुराणाभ्याम् वेदं समुपबृंहयेत् बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामपि प्रतरिष्यति' इतिहास और पुराणों के द्वारा वेद को समुपबृंहण (अर्थात् वेद को बढ़ा कर उसका अर्थ खोलना चाहिये) करना चाहिए। अल्पश्रुत अर्थात् कम सुने हुए व कम जानने वाले से वेद डरता है कि यह मेरी भी प्रतारणा न करे अर्थात् वेद को दूषित न करे। इसलिये पुराणों की आवश्यकता है परन्तु यह याद रखना चाहिए कि पुराण किसी खास पुस्तक विशेष ही को कहे यह बात नहीं है। उक्त दश विषयों के सहित और भी जो कुछ वर्णन हो वह पुराण कहलाता है और प्रचलित अठारह महापुराणों में कल्प, युग आदि भेद से यही दश विषय वर्णित पाये जाते हैं। अब आजकल कुछ देश काल की परिस्थिति में परिवर्तन होने से व साम्प्रदायिकता बढ़ जाने से उनमें इन विषयों से आभास मात्र की समता रखते हुए किन्तु सर्वथा विरुद्ध विषय भी प्रक्षिप्त हो गये हैं।

इतिहास ग्रन्थ रामायण व महाभारत आदि के नाम से प्रसिद्ध ही हैं जिनमें कि श्रीरामचन्द्र जी व युधिष्ठिर आदि महापुरुषों का चरित्र वर्णित है और वह केवल काल्पनिक ही नहीं है। आजकल इतिहास के सम्बन्ध में विशेष धारणा यह है कि इतिहास वही है जो देशकाल की शृंखला चाहे क्रमबद्ध

किसी अंश में न हो परन्तु धर्म अर्थ काम मोक्ष का वर्णन महापुरुषों के साथ अवश्य हो जिसका कि अनुकरण आम जनता कर सके। उसके अनुसार क्रमबद्धता से कोई विशेष लाभ नहीं है क्यों कि देश और काल तथा उनमें होने वाले विशेष व्यक्ति कब व कहां व कितने हुए यही यदि इतिहास का प्रयोजन हो तो इतिहास की पुस्तक गाड़ियों लदने वाली हो जावे जो किसी से पढ़ी भी न जा सके। इतिहास का तो प्रयोजन यही है कि वे हमें दर्शित उपदेश कहाँ व कब किसने व कैसे अमुक काम किया जिससे आम जनता का लाभ हो और लोक संग्रह (सर्व लोकों की सुस्थिति) हो। यह वेदों का चौथा उपाय है जो आचरण सबके काम में लाया जा सकता है और वेदों के अर्थों को खोलता है।

उपवेद

उक्त दश अंग व उपांगों (६ अंग व ४ उपांग) को छोड़कर चौदह विद्याओं में से अब चार वेद रह जाते हैं जिनके कि चार उपवेद हैं:—

पहिला उपवेद ऋगवेद का स्थापत्य अर्थात् शिल्प शास्त्र है। किन्हीं किन्हीं के मत में ऋगवेद का उपवेद आयुर्वेद लिखा हुआ है परन्तु आयुर्वेद के ग्रन्थ चरक सुश्रुत आदि मुक्त कण्ठ से अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद को स्वीकार करते हैं और यही प्रमाणित भी जान पड़ता है क्यों कि ऋगवेद

में बहुत स्थानों पर राजाओं की परिस्थिति के विषय में बहुत से सोने चाँदी आदि के किलों तक का वर्णन है नदियों के सेतु व उनका आपस में परस्पर के विजय का विषय वर्णित है। चाहे वह ईश्वरीय उपदेश काल्पनिक भाषा में हो परन्तु वह विषय है स्थापत्य का। स्थापत्य का अर्थ कोष के अनुसार यह है कि स्थपति याने कारीगर उसका कर्म व भाव अर्थात कारीगरी का वर्णन। प्राकृतिक पदार्थोत्पत्ति से लेकर मनुष्य के प्रयोजनीय वस्तु के बनने तक बीच में जितनी क्रिया हैं वह सब कारीगरी कहलाती हैं जैसे कि कपास से कपड़ा आदि।

व्याकरण व निरुक्त के अनुसार स्थापत्य का यह अर्थ है कि स्था माने ठहरना अर्थात संसार का ठहराव अपनी सत्ता में ठहरे रहना उसका पति अर्थात् रक्षा करने वाला स्थपति कहलाता है अर्थात् संसार स्थिति जैसे बनी रहे उस प्रकार से पदार्थों का प्रयोग में लाना जिसका काम है वह स्थपति है। तथा उसकी क्रिया और भाव स्थापत्य है। किन्तु कोष व व्याकरण निरुक्त का भाव एक ही है व प्राय: एक ही हुआ करता है। लेकिन कोष में शब्द का अर्थ विशेष व्यापक नहीं होता है। केवल पर्याय व रूढ़ि के अनुकरणात्मक होता है और व्याकरण निरुक्त में शब्द के मूलोत्पत्ति से लेकर और प्रयोग तथा प्रक्रिया में आने तक का वर्णन करते हुए और शब्द की व्यापकता दिखलाते हुए अर्थ बतलाया जाता है अर्थात् कोष में दिया हुआ अर्थ प्राय: व्यक्ति वाच्य हो जाता है और

व्याकरण निरुक्त में शब्द का अर्थ प्रायः जाति वाच्य हुआ करता है। इस स्थापत्य वेद में समस्त संसार की कारीगरी का वर्णन है वह सृष्टि के आदि से लेकर और मनुष्यों के उपाभोग योग्य सारी सामग्रियों के सज्जीकरण का वर्णन करता है उसमें वस्तुविद्या (इञ्जीनियरिंग) व अर्थ-शास्त्र आदि सभी अर्थ काम के विषय आ जाते हैं।

धनुर्वेद

यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है जिसमें युद्ध कला का वर्णन है। युद्ध कला में अस्त्र, शस्त्र, आयुध, शूल, यन्त्र आदि हथियारों का वर्णन है व सेना के क्रमबद्ध करने व संचालन का वर्णन है तथा लक्ष्य अलक्ष्य वेध आदि विषयों का वर्णन करते हुए सेना के चारों अङ्ग (रथ, हाथी, घोड़ा, मनुष्य) इनके शुभ अशुभ शकुन अशकुन गति विगति आदि के वर्णन हैं। इसके साथ साथ संसार के हितकर व्यक्तियों की रक्षा कैसे की जावे इसका भी वर्णन बहुत अच्छे ढंग से इसमें किया गया है जैसे कि संसार की स्थिति करने का ढंग यज्ञादि द्वारा यजुर्वेद में वर्णित है वैसे ही संसार स्थिति का वर्णन दृष्टि पूर्वक उपायों से राजकीय व सामाजिक प्रबन्ध के द्वारा इस यजुर्वेद के उपवेद धनुर्वेद में वर्णित है, इसी से इसे यजुर्वेद का उपवेद होना भी उचित ही है।

गान्धर्व वेद

सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद है जिसमें गाने का विशेष वर्णन है इसे संगीत शास्त्र भी कहते हैं। इसमें गाने के अंगी सहायक वाद्य (बाजा) आदि का भी वर्णन है। साम गान से चित्त एकाग्र होता है वही चंचल चित्त वालों के लिये पहिले साम की ओर आकर्षण करने के लिये तदनुरूप लौकिक गान व वाद्य की आवश्यकता है। साम का गान प्रायः याज्ञिक व ईश्वरीय है उसी के समझने समझाने के लिये यह उसका गान्धर्व उपवेद है जिसमें नाचना, गाना, बजाना, नाट्य कला आदिकों का भी वर्णन है।

आयुर्वेद

अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है। जैसे कि अथर्ववेद में शान्ति पुष्टि आदि यज्ञों का व औषधियों का वर्णन है उसी प्रकार आयुर्वेद में आयु कैसे जानी जावे व कैसे प्राप्त हो व आयु भर जीवन कैसे सुचारु रूप से सुस्थिर रहे इसका वर्णन है इसलिये इसे आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद में आठ विभागों द्वारा शरीर की रक्षा का वर्णन बहुत अच्छे प्रकार से है। वह आठ विभाग ये हैं:—शल्य जिसे सर्जरी कहते हैं। इसमें यन्त्र शस्त्रादि द्वारा शरीर के अवयवों का निरीक्षण व उसमें आगन्तुज कण्टकादि का निस्सारण का प्रकार वर्णित है जो कि आजकल प्रायः ऐलोपैथिक प्रणाली में अच्छा पाया जाता है। अपने देश में इस

अंग का विषय जिस समाज में दिया गया वह अपने को वैद्यगुनी कहते हैं और सींगी आदि लगाने का काम भी करते हैं। यह शल्य तन्त्र के पहिले वैद्य थे अब उनकी जाति सी हो गई है।

दूसरा आयुर्वेदांग शालाक्य तन्त्र है जिसमें हंसुली से ऊपर के अंग कंठ, मुख, नांक, आंख, कान, शिर आदि की सर्जरी का वर्णन है। केवल सर्जरी का ही नहीं किन्तु अन्य अन्य चिकित्सा के उपायों का भी वर्णन है जैसे कि औषधि खाना लगाना आदि। यह अंग जिनको दिया गया था वह प्रायः सथिया या सठिया कहलाते हैं जो आजकल केवल आंख का काम विशेष रूप से जानते हैं। अंग्रेजी चिकित्सा प्रणाली में इसका भी सिल-सिला उन्नत रूप से हैं।

तीसरा आयुर्वेद का अंग काय चिकित्सा है। इसमें समस्त शरीर व्याप्त रोगों की औषधि उपचार अन्न विहार आदि का वर्णन है जो अब वैद्यों के पास रह गया है।

चौथा आयुर्वेद का अंग भूत विद्या है। यहां पर भूत शब्द के प्रायः दो अर्थ हैं (१) भूत = पंचतत्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, व आकाश) इनके विकारों से मस्तिष्क में जो विकार पैदा होकर उन्मत्तता या प्रमत्तता (पागलपन व असावधानी) पैदा होती है (२) दूसरे भूत शब्द का दूसरा अर्थ प्रेत इत्यादि ग्रह कहलाते हैं जिनके देव असुर राक्षस पिशाच वैताल यक्ष गान्धर्व आदि भेद बतलाये गये हैं। इन जीव विशेषों के मस्तिष्क में आवेश होने से जो एक पूर्व या अपूर्व उन्मत्तता की भांति बात

पैदा होती है उसे भून विद्या कहते हैं। इनके उपचारों का वर्णन इसी अङ्ग में है जो कि आजकल झाड़ फूंक करने वालों के पास देखी जाती है।

पांचवां आयुर्वेदांग कौमार भृत्य कहलाता है जिसमें गर्भवती प्रसूता आदि स्त्रियों के रोगों का वर्णन व उपचार और गर्भ व गर्भ से उत्पन्न कुमारों के रोगों का वर्णन व उपचार है। यह काम दाइयों को दिया गया था।

छठवां आयुर्वेद का अंग अगद तन्त्र कहलाता है इसमें स्थावर जंगम विषों का वर्णन नाम, लक्षण, परीक्षा, उपचार, आदि से बहुत अच्छे ढंग से है। इनके वैद्य गारुड़ कहलाते थे। अर्थात् इस अङ्ग को जानने वाले गारुड़ नाम से प्रसिद्ध थे। यह विद्या भी आजकल झाड़ फूंक वालों व फुटकर लोगों के पास है।

सातवां आयुर्वेद रसायन तन्त्र कहलाता है। इसमें आजन्म मरणान्त नीरोग रहना कभी बुड्ढा न होना व काया कल्प करना आदि विविध भांति से बतलाया गया है यह वैद्यों के पास भी है और विशेष साधु सम्प्रदायों में देखा जाता है।

आठवां आयुर्वेदांग वाजीकरण है। उसमें रज वीर्य के विषय का वर्णन है। उनकी रक्षा उनके शुद्ध करने की रीति, बढ़ाने की रीति आदि का वर्णन है। यह तन्त्र भी वैद्यों, साधु सम्प्रदाय वालों, योगियों ब्रह्मचारियों तथा कुछ कोक शास्त्रज्ञों के पास है आजकल इसे शृंगार प्रिय मनुष्य ही अधिक पसन्द करते

हैं किन्तु यह अंग ब्रह्मचर्य का मूल साधन भूत व अच्छी संतान उत्पन्न करने का साधन भूत है।

इस प्रकार आयुर्वेद मोटे रूप से आठ विभागों में वर्णित है वैसे इसके और भी विभाग हैं जैसे द्रव्य यानी औषधियों के नाम लक्षण परीक्षा का वर्णन जिसे द्रव्य शास्त्र या गुण शास्त्र कहते हैं यह निघण्टु भी कहलाता है और इसी का विभाग स्वास्थ्य वृत्त है जिसमें चरिया चन्द्रोदय यानी दिनचर्या रात्रि चर्या ऋतु चर्या आदि सदाचरण का वर्णन है, इसी भांति और भी इसके विभाग हैं जिसमें संसार के जलवायु काल के बिगड़ने व सुधरने का उल्लेख पाया जाता है धार्मिक संस्कारों का गुण दोष या क्रिया विधि बतलाने वाला भी यही आयुर्वेद शास्त्र है इसी में पठन पाठन आदि की विधियाँ हैं अर्थात् रोग निवृत्ति के जितने उपाय व रोगों के जानने के जितने उपाय व शारीरिक दुःखों के विशेष ज्ञान व निवारण का वर्णन इस आयुर्वेद में है।

इन उपांगों को भी कोई कोई वेद मानता है क्योंकि तपों द्वारा या योग द्वारा ऋषियों ने वेद समझने के लिये ही ईश्वर के आधार पर ही इनका निर्माण किया है अथवा अवतार भूत विशेष व्यक्तियों द्वारा पहिले इनका ऋषियों को मूल ज्ञान हुआ और फिर उन्होंने इनका प्रस्तार किया। इसलिये इनकी प्राप्ति में ईश्वरीय सम्बन्ध अनिवार्य सा माना गया है इसलिये इन्हें भी ईश्वरीय घटना होने से वेद ही बहुत से लोग मानते हैं। कोई २ केवल मंत्र संहिताओं ही को वेद मानते हैं जो सर्व सम्मत है।

मन्त्र केवल ईश्वर दत्त ही हैं और वेद का अर्थ यह है कि जिनके द्वारा जाना जाय, ज्ञान हो, विचार हो, लाभ हो, पदार्थ अपनी सत्ता में यथावत देश काल तक निर्विघ्न बना रहे इत्यादि जिसका ज्ञान व धर्म, अथवा विचार व आचार का ज्ञान भी ज्ञान कह सकते हैं और मंत्र का अर्थ है जिससे माना जाये, जिसको सब आदर दें अथवा जो गुप्त रूप से प्राप्त हो या गोप्य भी हो इस लिये मन्त्र या वेद का एकार्थक होना ही उचित नहीं है। मन्त्र का अर्थ केवल ईश्वरदत्त ज्ञान तथा वेद का अर्थ अंग, उपांग, उपवेद ब्राह्मण सहित मंत्र से है। इनमें से अंग व उपागों का दिग्दर्शन हुआ अब कुछ ब्राह्मणों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

मंत्र संहिता वह है जो त्रिकाल में काम आने वाला विषय हो और सबके हितकर हो उसे ही किसी न किसी क्रम से सबको जानने के लिये जो ब्राह्मणों में उन मन्त्रों की व्याख्या तपो व योग द्वारा की है उन्हीं ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते हैं। मन्त्रों में बीज रूप से संपूर्ण ज्ञान भरा हुआ है। ब्राह्मणों में उस ज्ञान का स्पष्टीकरण व वर्गीकरण व समझने समझाने के लिये प्रयत्न किया गया है।

प्रत्येक वेद के अलग अलग ब्राह्मण हैं जैसे कि ऋगवेद का ऐतरेय, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद का छान्दोग्य व गोभिल, अथर्ववेद का गोपथ आदि ब्राह्मण। वेदों के उक्त ही ब्राह्मण नहीं हैं किन्तु इनके अतिरिक्त और भी हैं जैसे शांखायन, शड्विंश, मैत्रायण, कौपीतकी इत्यादि।

ब्राह्मणों में पहिले पहिल तीन विभाग किये गये हैं—१कर्म-काण्ड, २उपासनाकाण्ड, व ३ज्ञानकाण्ड। इन्हें काण्डत्रय या किसी किसी के अर्थ में त्रयविद्या या वेदत्रयी कहते हैं परन्तु वेदत्रयी का अर्थ कुछ भिन्न भी है (वेदत्रयी का अर्थ भाषा के उन प्रधान तीन प्रकारों के हैं जिन्हें पद्य, गद्य व गीत कहते हैं)

कर्मकाण्ड

कर्मकाण्ड में यज्ञ याग आदि का विशेष वर्णन है जैसे कौन से यज्ञ हैं कैसे किये जाते हैं उनमें क्या क्या सामिग्री लगती है इत्यादि बातें। साधारणतया यज्ञों के दो विभाग हैं १श्रौत व २स्मार्त—स्मार्तों को गृह्य भी कहते हैं। श्रौत यज्ञ वह हैं जिनमें समष्टि को सामने रखकर नित्य व विशेष अवसर पर करते हैं और गृह्य वह हैं जो व्यष्टि को आगे रखकर संस्कार या महायज्ञ के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के होने चाहिये। इन्हीं कर्मों के कोई कोई चार भेद करते हैं १नित्य, २नैमित्तिक, ३प्रायश्चित्त, और ४काम्य। नित्यकर्म में शौच, स्नान, संध्यावंदन, पंचमहायज्ञ व निर्वाह (जीविका) आदि आ जाते हैं। नैमित्तिक कर्म शान्ति पुष्टि, या किसी निमित्त (कारण) के उपस्थित होने पर किये जाते हैं। प्रायश्चित्त कर्म किसी प्रत्यवाय (पाप) के हो जाने पर अथवा शास्त्र प्रतिकूल आचरण करने पर किये जाते हैं। यह तीनों यथा अवसर सब को करने ही चाहिये। काम्यकर्म कामना

होने पर किये जाते हैं कामना बहुत प्रकार की है जैसे पुत्र कामना धनकामना, स्वर्ग कामना, आदि। गीता व उपनिषदों में काम्य कर्म का निषेध सा है क्योंकि कामना का सिद्ध होना प्रारब्ध व पुरुषार्थ दोनों पर निर्भर है। यदि प्रारब्ध में वह कामना सिद्धि प्राप्त नहीं है तो बहुत ही उत्कृष्ट पुरुषार्थ हो तब भी कदाचित प्राप्त न हो। दूसरे कामनाओं में चित्त रखने से चित्त निष्काम नहीं होता और बिना निष्काम के निश्चिंत नहीं होता और बिना निश्चिन्तता के शान्ति नहीं मिलती तब बिना शान्ति के सुख कैसे मिल सकता है जिसे सभी चाहते हैं इसी कारण काम्य कर्मों का निषेध किया गया है। उसी नित्य सुख की प्राप्ति के लिये कर्म के आगे उपासना व ज्ञान का वर्णन है।

उपासना

उपासना—इसका अर्थ उप+आसना अर्थात समीप में बैठना। कर्मकांड में यह दृष्टि रखनी पड़ती है कि ईश्वर कहीं है उसकी आज्ञानुसार उसके प्रसन्न करने के लिये कर्म करना चाहिये। और उपासना में सब ईश्वर ही है व ईश्वर हम में भी व्याप्त है तो हम उसी के पास बैठे हुए हैं इस दृष्टि से कर्म करना उपासना है जो आजकल भक्ति के रूप में व ईश्वरीय प्रेम के रूप में परिणित हो गई है। वस्तुतः ब्राह्मण में उपासना बहुत प्रकार की बतलाई गई है जैसे कि प्राणोपासना, वैश्वानर पुरुष उपासना, प्रतीकोपासना, माता पिता गुरु पति स्वामी आदि की उपासना, सूर्य की उपासना, अग्नि की उपासना,

इत्यादि। इनका भाव यही है कि जो विशेष विभूति व ऐश्वर्यवान आदि पदार्थ है वही ईश्वर है पहिले उनके पास जाना बैठना यह उपासना है और उनके से अपने कर्मों को बनाना या उनकी सेवा करना उन्हें प्रसन्न रखना उनकी आज्ञा का पालन करना या उन्हें सुशोभित व तृप्त व संतुष्ट करना यही सब कर्म उपासना है इन्हीं को भक्ति भी कहते हैं। उपासना केवल नाम संकीर्तन मात्र वाणी के व्यापार ही को नहीं कहते हैं! शरीर व वाणी के व्यापार को कर्म कहते हैं और मन के व्यापार को उपासना कहते हैं अर्थात् जिनका मनोभाव यह हो कि वह ईश्वर समीप ही है वह ईश्वर समीप में बैठा हुआ है क्योंकि उप का अर्थ समीप, आसना का अर्थ बैठना है। हम उसके पास बैठे हैं और वह हमारे पास बैठा है इस भाव से प्रेम निमग्न होना उपासना है। फिर चाहे वह शरीर द्वारा या केवल वाणी द्वारा या केवल मन ही द्वारा किया जावे। इस भाव से सभी को अपने अपने कर्म में तत्पर रहना ही उपासना हो जाती है अथवा जब कर्म करने का सामर्थ्य न रहे तब केवल वाणी या मन से ईश्वर की याद करना उपासना है। यह अच्छे प्रकार जंगलों में जाकर की जाती है। वहां प्रत्येक पदार्थ ईश्वरीय देखने में आते हैं व प्रयोग में आते हैं इसी से उपासना के वर्णन करने वाले ब्राह्मणों को आरण्यक कहते हैं।

ज्ञानकाण्ड

ज्ञानकांड—ज्ञानकाण्ड में संसार की उत्पत्ति, स्थिति,

लय के विचार के साथ मैं क्या हूं, ईश्वर क्या है मुझ में संसार में व ईश्वर में क्या सम्बन्ध है व क्या भेद भाव है इत्यादि जानना ज्ञान कहलाता है ।

कर्मकांड में ईश्वर कहीं था, उपासना कांड में सब कुछ ईश्वर है वह हमारे समीप है हम जिस पदार्थ के समीप हैं वही ईश्वर है, ज्ञानकांड में जब सभी ईश्वर हैं व ईश्वर समीप है तो यह हममें व्याप्त है तो क्या हम ही वह या वह ही हम हैं इत्यादि बातों का विचार ब्राह्मणों में जहां तहां किया गया है। ईश्वर के समीप जो निश्चय रूप से बैठाल दे उसे ही उपनिषद (उप=समीप, नि=निश्चय, षद्=बैठना) कहते हैं । उपनिषद शिक्षा अर्थात् ब्राह्मणों का ज्ञान काण्ड ईश्वर के समीप निश्चय करके बैठाल देता है अब आगे का वह अनुभव करना या तद्रूप होना या केवल होना यह अपना काम होता है इसलिये इस ज्ञान काण्ड को उपनिषद् काण्ड कहते हैं। कर्मकाण्ड वही है जिसमें ईश्वर का प्रथम पुरुष से निर्देश है। ईश्वर परोक्ष माना जावे। उपासना कांड वह है जिसमें ईश्वर मध्यम पुरुष प्रतिद्वन्दी व प्रत्यक्ष हो और ज्ञान कांड वह है जिसमें ईश्वर उत्तम पुरुष हो । मैं ही वह था वह ही मैं यह जाना जाय या निश्चय किया जावे। इन काण्डों का यही साधारण सा भेद है।

ब्राह्मणों में सभी विषय प्रायः तीन दृष्टि से दिखलाये गये हैं— अधिभूत, अधिदैव व अध्यात्म ।

अधिभूत का अर्थ है कि भूतों को अर्थात पृथ्वी, जल तेज, वायु व आकाश में दृष्टि रखकर जो विषय वर्णित हो।

अधिदैव का अर्थ यह है कि इनका संचालन, मिश्रीकरण या प्रयोग करने वाली जो शक्ति विशेष व व्यक्ति विशेष है उनमें दृष्टि रखकर जो विषय वर्णित किया जाता है। और

अध्यात्म वह है कि जिसमें सब विषय अपने में दृष्टि रखकर वर्णन किया जावे।

उक्त कारणों ही से कर्मकांड में अधिभूत प्रधान विषय है और उपासना कांड में अधिदैव प्रधान विषय है तथा ज्ञानकांड में अध्यात्म प्रधान विषय है। गीता के शब्दों में अधिभूत वह क्षर भाव है जो नित्य परिवर्तन शील है, अधिदैवत वह पुरुष विशेष है जो परिवर्तक हो अर्थात् क्षर को परिवर्तन करने वाला हो और अध्यात्म वह अपना होना है अर्थात् स्वभाव है कि जिसे अपने का पूर्ण ज्ञान हो।

सभी काण्डों के विषय में इन तीन बातों का लागू होना ब्राह्मण ग्रन्थों में अधिकतर है।

वैदिक साहित्य के समझने के लिए अधिभूत, अधिदैव व अध्यात्म इन विषयों का जानना बहुत ही आवश्यक है। बहुतों के मन में यही तीनों का ज्ञान होना वेदत्रयी कहलाता है। वैदिक विषय इन्हीं तीनों को दृष्टि में रखकर ही समझना चाहिए। लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलक ने अपने 'गीता रहस्य' में इन्हीं तीन बातों पर दृष्टि रखकर ही कर्मयोग का

निर्णय किया है। कौन सा विषय केवल आधिभौतिक है या कौन सा विषय आधिदैविक है या कौन सा विषय आध्यात्मिक है जब तक समझ में नहीं आता तब तक वेदों का प्रसंग भी उचित रीति से समझ में नहीं आ सकता है। पुराणों में भी इनका वर्णन बड़े विशद रूप से है।

स्वामी दयानन्द जी ने ब्राह्मणों को ही पुराण माना है किन्तु ब्राह्मणों की गिन्ती वेदों में और पुराणों की गिन्ती उपांगों में है। यह भी कहा जा सकता है कि मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् सब श्रुति हैं और अंग स्मृति हैं तथा पुराण प्रथक से हैं। श्रुति, स्मृति व पुराण यह तीन भेद कहीं कहीं पर हैं जिनमें कि श्रुति, स्मृति विषय सर्वमान्य प्राचीन व सर्वसम्मत है और पुराण किसी के मत से आधुनिक व अर्वाचीन है।

ब्राह्मणों के विषय में पहिले इतना ही जानना पर्याप्त नहीं है किन्तु यह भी जानना चाहिए कि जो विषय समझाने के लिये वेद में दृष्टान्त रूप से बहुत संक्षिप्त व्यक्तिगत पदार्थों से वर्णन किये गये हैं उन कथा भागों का कुछ विस्तार ब्राह्मणों में है तथा विशेष विस्तार पुराणों में है। जैसे कि वेद मन्त्र से हिंसा व अश्लीलता किसी विषय के परिहार रूप से किसी कथा के रूप में कही गई है उनका स्पष्ट करना संक्षेप से ब्राह्मणों में व आलंकारिक साहित्य भाषा द्वारा पुराणों में विस्तृत रूप से वर्णित है परन्तु वह हिंसा अहिंसा का प्रतिपादक या अपवादक

नहीं है किन्तु एक पोषक रूप में है।

इन विषयों को भी बहुत ध्यान से वैदिक साहित्य पढ़ते समय विचार लेना चाहिए। वस्तुतः हिंसा अश्लीलता वेदों में नहीं के बराबर है उसका देख पड़ना केवल परिसंख्यात है (अर्थात् अधिक करने वाले को कम करने की ओर लगाना है) आजकल इस विषय में बहुत ही वाद विवाद है परन्तु वेदों का तो मूल उपदेश ही यही है कि जिस प्रकार सुख दुःख निन्दा स्तुति अनुकूल प्रतिकूल भाव कुभाव हमको पसन्द या नापसन्द हैं उसी प्रकार सबको पसन्द या नापसन्द हैं। जिस प्रकार हमको झूठ नापसन्द है उसी प्रकार दूसरे को भी वह नापसन्द है फिर ऐसा व्यवहार करने की वेद में आज्ञा कैसे हो सकती है। वेद में तो सर्वभूत हित व समता की दृष्टि से ही धर्म का व ज्ञान का होना सम्भव है और है भी यही बात अगर हम किसी के साथ हिंसा करेंगे तो कोई हमारे साथ भी करेगा। हम किसी के साथ अश्लीलता करेंगे वह हमारे साथ अश्लीलता करेगा अर्थात् जैसा व्यवहार हम संसार में करेंगे उसका वैसा ही उत्तर हमको मिलता रहेगा। इसी को गीता में आत्मोपम्य दृष्टि कहा है अर्थात् जैसा हम अपने को चाहते हों वैसा ही हम सब के साथ करें। इन परिणामों को दृष्टि में रखकर ब्राह्मणों या पुराणों में बहुत सी आख्यायिकाओं व कथाओं का वर्णन है जिन्हें कि ऐतिहासिक पुरुष वेदों में इतिहास बतलाया करते हैं। इन विषयों का भी जानना

ब्राह्मणों में बहुत आवश्यक है। ब्राह्मणों में इतिहास का आभास मात्र है कि जो वेदमन्त्रों के स्पष्ट करने के ही लिए उनके अनुसार ही कथा रूप में वर्णित को विस्तृत कर दिया है। ब्राह्मणों के अतिरिक्त वेदों का मन्त्र भाग सर्वथा निर्विवाद व अपौरुषेय कहा जाता है। आजकल जो मन्त्रों की संहितायें मिलती हैं उनमें खिल भाग व शुक्रिय भाग व परिशिष्ट भाग व कुछ ब्राह्मणांश भाग स्पष्ट मिला हुआ बतलाया गया है परन्तु यह भाग छिपा हुआ नहीं मिला है। . सब वैदिक ब्राह्मणों या वैदिक पण्डितों के ज्ञान में है और यह सब वेद ही कहलाते हैं। अपौरुषेय या ईश्वर कृत मन्त्र ही सर्व सम्मत है और शेष वेद भागों में मतभेद है किसी के मत से मंत्र ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् खिल शुक्रिय परिशिष्ट यह सभी अपौरुषेय व ईश्वर दत्त हैं और किसी के मत में मन्त्र भाग अपौरुषेय व ईश्वर दत्त है और शेष भाग उनकी व्याख्या व अनुव्याख्या तथा समझने समझाने के लिये विशेष व्याख्यान के रूप में हैं। वेद संज्ञा सभी भागों की है मंत्र संज्ञा ईश्वरीय भाग की है और वह मंत्र भाग एक ही वेद के रूप में भगवान ने कहे हैं। पीछे उनके भेद व विभाग व शाखायें ऋषियों ने की हैं ऐसा मत किसी किसी का है। किसी के मत से प्रथम ही परमात्मा ने चार ऋषियों के हृदय में चारों वेदों का ज्ञान दिया और पीछे से उन्हीं ऋषियों से और ऋषियों ने जाना या अनुभव से प्राप्त करके उन्हीं में अपने ज्ञान को मिला दिया कहीं तो ऐसा भी

कहा है कि ब्रह्मा के मुख से चारों वेद निकले परन्तु कहीं कहीं ऐसा भी है कि उन ऋषियों से चारों वेद पाये या निकाले जैसा कि तप व समाधि द्वारा उन मन्त्रों का प्राप्त करना अब भी सम्भव है।

मन्त्र

मन्त्रों के विषय में यहाँ अब कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। मन्त्रों का नाम है वेद, श्रुति आमनाय, निगम निगद यह नाम और वेद भागों के भी हैं। परन्तु प्रथमतः यह मन्त्र भाग के ही नाम उनके अर्थों से जाने जाते हैं। वेद ज्ञान व विचार आदि। श्रुति जिसके द्वारा सुना जाता है या जो गुप्त रीति से सुनी गई है। आमनाय, जो अभ्यास किये जाते हैं अर्थात् जिनका अभ्यास करना या रटना चाहिये। निगम निश्चित रूप से जो प्राप्त किये जायें। निगद निश्चय रूप से जो कहे गये अथवा ऋषियों ने तपो समाधि द्वारा अपने भीतर गये सुने। यह सब अर्थ तद्रूप मन्त्रों ही में लागू हैं। जितने मन्त्र हैं वह किसी न किसी यज्ञ में भी विनियुक्त हैं। (यानी काम में लाये जाते हैं) इसी से मंत्र संहिताओं के भाष्यकार इनको यानी मन्त्रों का अर्थ यज्ञ परक ही किया है। उनके शब्दों में जो व्यापक अर्थ भरा हुआ है उन पर कम ध्यान दिया है परन्तु वेद मन्त्रों के अर्थों में यह बात बहुत ही स्मर्णीय है कि वह ईश्वरीय है और वह सर्वज्ञ के कहे हुए सर्व विषयों के संज्ञारूप हैं। यज्ञपरकता केवल

उदाहरण मात्र है। वेद भाष्यों में यज्ञपरकता उदाहरण रूप में मान लें और केवल शब्दार्थ व धात्वार्थ ले लें तो मन्त्रों का अर्थ व्यापक हो जाता है और अपूर्वक ज्ञान का बोध कराता है। इसी से कुछ लोगों का विचार है कि पहिले शब्दार्थ व धात्वार्थ हिन्दी में लिखा जावे और यज्ञपरकता भी यथावसर दिखलाई जावे।

वेद की शाखायें

इस अवसर पर यह भी विचार कर लेना चाहिये कि वेद की शाखायें क्या हैं। कुछ शाखायें तो उनकी व्याख्या रूप में हैं और कुछ शाखायें इस प्रकार हैं कि सर्वज्ञ का ज्ञान सर्वकाल व सर्वरूप में एकसा रहता है। परन्तु कहने व बतलाने में क्रम से ही कहना व बतलाना बनता है। जिस जिस क्रम से जिन जिन ऋषियों ने कहा है उन उन ऋषियों के उस क्रम की एक शाखा मान ली गई है यहां तक की यजुर्वेद के जो दो भाग बड़े बड़े शुक्ल और कृष्ण के नाम से विख्यात हैं जिनमें कि शुक्ल का विशेष प्रचार उत्तरी भारत में है और कृष्ण का विशेष प्रचार दक्षिणी भारत में है लेकिन इन दोनों भागों में लगभग मन्त्र वही हैं या कुछ और भी होवें परन्तु क्रम भिन्न है। इसी प्रकार अन्य वेदों की भी शाखायें क्रम भिन्नता का ही बोधक हैं या मंत्रों के व्याख्यानरूप से कुछ छोटी बड़ी भी हो गई हैं। कोई नई बात बतलाने वाली शाखायें नहीं हैं इसी से जो वेदों की चार संहितायें आजकल प्रचलित हैं और सर्व मान्य हैं वही मूल वेद संहिता हैं

और जो शाखायें उपलब्ध व अनुपलब्ध हैं वह इनसे मिलती जुलती ही हैं या होंगी। अब जो यह कहा जाता है कि वेद अनन्त हैं सो यह बात सब भागों को लेकर अथवा अर्थ की व्यापकता के ध्यान से कही गई है जैसे कि किसी के मस्तिष्क के आकार का प्रकार सीमित होता है परन्तु उसमें कितना ज्ञान भरा रहता है यह अज्ञेय सा रहता है इसी प्रकार किसी अंश में भगवान की आज्ञा रूप ज्ञान मस्तिष्क की सीमा चारवेद हैं परन्तु उनमें क्या भरा हुआ है यह अनन्तता है। इसीलिये प्रायः किसी खास व्यक्ति का दिया हुआ अर्थ अब तक सर्व मान्य नहीं हुआ। यही बात यहां लिखे हुए अर्थ में भी समझे रहना चाहिये।

वेदों के ऋषि, छन्द, देवता, संहिता, अध्याय, कांड, सूक्त, अर्ची, प्रपाठकादि क्या हैं यह तो आजकल हिन्दी के कई ग्रन्थों में समझाया गया है किन्तु यहां पर संक्षेप से इनका विषय सटीक लिखा जाता है जिससे कि वेदों के मन्त्रों के अर्थों में इनका भी ज्ञान साधारण रीति से हो जावे। वेद शब्दादि की यह वेदता भाष्यों में लिखी है कि:—

'प्रत्यक्षेणानुनित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते, एनं वदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता'—प्रत्यक्ष व अनुमान से जो उपाय नहीं समझ में आता वह वेद के द्वारा कहते हैं इसलिये यही वेद की वेदता है और यही अपौरुषेयता है भी।

'अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शनम्, सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्यनास्त्यंध एवसः'—अनेक संशयों को काटने वाला और

परोक्ष अर्थ को दिखलाने वाला अथवा अप्रत्यक्ष अर्थ को दिखलाने वाला और सब की आंख रूपी शास्त्र जिसके नहीं है वही अंधा है।

'ज्ञानं विचारः सत्ताच लाभश्चचेतनाद्दमः, घञ्प्रत्ययाग्त विद्धानोरर्थोः वेदः स्वभावतः' = विद् ज्ञाने, विद् सत्तायां, विद् विचारणे, विद्लृलाभे, विद् चेतनाख्यान निवासेषु यह सब व्याकरण की धातुयें हैं इनमें एक विद् धातु है जिसके अर्थ भिन्न २ बतलाये गये हैं इसी विद् धातु से सब अर्थों से सम्बन्ध रखने वाला घञ्प्रत्ययान्त वेद शब्द स्वाभावतः सिद्ध है। (सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे, विन्दते विन्दति प्राप्तौ वेदयते चेतना दिषु)

श्रुति

श्रुति—'श्रुतिर्यया श्रुतं स्यान्तेश्रेयः प्रेयश्च हर्षिभिः, शब्द वर्ण प्रवृतिर्या स्वतंत्रो विकाशिका' = श्रुति वह है जिसके द्वारा ऋषियों ने श्रेय व प्रेय को अपने भीतर अर्थात् अन्तःकरण में सुना। यह शब्द के वर्ण की प्रवृत्ति मूल भूता स्वतन्त्रता से विकसित होने वाली श्रुति कहलाती है।

स्मृति—'स्मृति स्तद्नु भावोस्ति प्रत्यक्ष लोकतस्त्वतः बीजांक रेखा विज्ञानैश्चिकित्सादिरसायनैः' = स्मृति का अर्थ है श्रुतियों का अनुभव अपने से बाहर लोक से जिस प्रकार प्रत्यक्ष किया गया तथा अंकरेखा बीजगणित द्वारा विज्ञानपूर्वक वैद्यक आदि रसायन शास्त्र द्वारा निश्चय किया गया। जिनके मन में भाया व

वेद विकाशात्मक हैं उनको इस श्लोक के अर्थ में विशेष ध्यान देना चाहिये।

'भावा व्यक्त परोक्षाणां नभः स्थल जलौक साम्।
क्लिष्टानाम क्षराधिक्यरूढ़ीनां, दर्शकः श्रुतिः॥'

=भाववाचक पदार्थ अव्यक्त पदार्थ परोक्ष पदार्थ आकाशीय पदार्थ पार्थिव पदार्थ जलीय पदार्थ इन शब्दों का नाम बतलाने वाली श्रुति ही है और क्लिष्ट शब्दों की व अधिक अक्षर वाले रूढ़ि शब्दों की दिखलाने वाली श्रुति ही है।

'सर्व देश प्रसिद्धा वै बुद्धि पूर्वा हिता च वाक्।
प्राचीना ईशदत्ता हि वर्ण स्फोट विकाशनात॥

=जो (वाणी) भाषा सर्व देशों में प्रसिद्ध बुद्धि पूर्वक विषय वाली हितकर प्राचीन है वह अक्षरों के स्फोट विकास के विचार से ईश्वरदत्त ही है (वही वेद कहलाते हैं)

'मंत्राश्च मानिता विप्रैर्ये गुप्त परिभाषिताः।
ऋषयोः मंत्र द्रष्टारो मुनिः सल्लीन मानसः॥'

=मंत्र वह हैं जो विप्रों से माने गये, अर्थात् स्वीकार किये गये व आदर दृष्टि से देखे गये हैं और जो गुप्त रीति से अर्थात् अन्तःकरण के भीतर कहे हुए सुने गये। ऋषि वह हैं जो मन्त्रों को देखने वाले हैं अर्थात् जिनके अन्तःकरण में मन्त्र सुनाई दिये मय अर्थ भाव के। मुनि वह हैं जिनका मन सत में लीन रहता हो।

'शब्दार्थादि विशेषाणां छादना छंद उच्यते ।
देवना देवता मंत्रे दिव्य शक्ति पदार्थका: ॥'

=शब्द और अर्थ आदि विशेषताओं का आच्छादन करने वाला यानी ढकने वाला छंद कहा जाता है अर्थात् जिस एक वाक्य प्रबन्ध में कोई शब्द व उनके अर्थ विशेष लिखे जाते हैं वह वाक्य प्रबन्ध वेदों में छन्द कहलाते हैं वह चाहे नियताक्षर पाद हों चाहे अनियाताक्षर पाद हों। मन्त्र में देवता वह हैं जो देवन करते हों अर्थात् समस्त संसार में दिव्य शक्ति हों व दिव्य पदार्थ हों व अपनी दिव्य शक्ति द्वारा ब्रह्माण्ड के संचालक हों और भी देवता शब्द का अर्थ यह है:—

'देवाः सदा ज्ञान गति क्रियादि चेष्टाप्रदा: सात्विक सूक्ष्म शक्तयः, मंत्रार्थकाः कल्पित रूप कास्त था विराड वयवादि विचेंद्रियाणि ।'

=देव शब्द इतने अर्थों में प्रयुक्त पाया जाता है सदा ज्ञान गति क्रिया आदि चेष्टाओं की सतोगुणी सूक्ष्म शक्तियां संसार में व्याप्त हैं, दूसरे जो मंत्रों का अर्थ मात्र हो जैसा कि मीमांसा का सिद्धांत है, तीसरे जिनका रूप कल्पित करके उपासना के लिये बतलाया गया हो, चौथे विराट के जो अंग विशेष हैं उनका नाम है, पांचवें शरीर की इन्द्रियों को भी देवता कहते हैं इन्हीं इन्द्रियों के सहायक जो बाहरी पदार्थ हैं वही विराट् के अंग हैं जैसे सूर्य आंख है दिशायें कान हैं इत्यादि ।

इसी भांति ऋषि शब्द भी इतने अर्थ में प्रयुक्त हुआ है:—

=अर्थात् वेदों की आज्ञा यह पाई जाती है कि विचक्षणों (विचार शील) को चाहिए कि ज्ञान पूर्वक लोक संग्रह करने वाले सदा सर्व हित सत्य कार्यों को आचरण करें और करावें।

'एतदर्थं तु भगवान् नाना रूप धरो विभुः ।
दर्शयन्सुख मार्गं च नित्यं सर्व समीप्सितम् ॥'

=इसीलिये भगवान नाना रूप धारण करने वाले हुए जो कि सर्व व्यापक और सर्वज्ञ है कि जो सब को ईप्सित (चाहा हुआ) सुख है उस रास्ते को (जो वेद में बतलाया गया है) करके स्पष्ट दिखलाना चाहिये ।

'क्वचित्कर्म क्वचिज्ज्ञानं क्वचिच्च तत्समुच्चयम् ।
तिर्यग्रूपा दृपिरुपान महापुरुष रूपकान ॥
दर्शितं ह्यवतारेण शिक्षयल्लोक संग्रहम् ।
यथा धिकार सद्व्यर्थं महा योगेश्वरेण वै ॥'

=भगवान कभी तिर्यक योनि में अवतार लेकर (जैसे कि मत्स्य, वाराह, नृसिंह) केवल कर्म करते हैं जिससे कि यह उपदेश है कि संसार का उद्धार यदि ऐसी नीचता से हो तो भी अच्छा है कहीं ऋषि रूप अवतार लेकर (जैसे सनत्कुमार व्यासादि) केवल ज्ञान को दिखलाते हैं और कहीं महापुरुष रूप धरके (अर्थात् राम कृष्ण आदि का औतार लेकर) उन कर्म ज्ञान का समुच्चय दिखलाते हैं जिससे लोक संग्रह बना रहे व अधिकार

सिद्धि यती रहे, अनधिकार चेष्टा न की जावे। इसी से यह महा योगेश्वर कहलाते हैं।

भागवत के पंचम स्कन्ध के उन्नीस अध्याय श्लोक ५ में लिखा हुआ है कि भगवान का अवतार लेना केवल राक्षसों के वध के लिये नहीं है वह मनुष्य धर्म के आचरण के पूर्ण शिक्षा के लिये है। इसी से वेदों में भी किसी किसी मंत्रों से अवतारा-भास पाया जाता है।

अब जो कहा जाता है कि वेदों में इतिहास है या वेदों में वह शब्द हैं जो पदार्थ देखे गये हैं उन्हीं के बतलाने वाले हैं इस विषय का विचार इस प्रकार है:—

'मनवात्पूर्वं भूतानि वस्तू निदि विचाम्बरे ।
नक्षत्र ग्रह तारादि मरुद् द्रव घनानिच ॥
पृथिव्यां च तथा वायु सिन्धु पाषाण कानिच ।
औषधानि विचित्राणि जन्तवः पशु पक्षिणः ॥
तेषां चारित्र्य सादृश्यात्कल्पिता विविधा कथाः ।
उपदेशार्थ मलं कारै वेदेषु नैतिहासिका ॥'

मनुष्य से पहिले मंत्र भूतादि व आकाश अंतरिक्ष में नक्षत्र ग्रह तारा वायु द्रव (पानी) घन (ठोस) आदि व पृथ्वी में वायु समुद्र पत्थर पेड़ नाना प्रकार के कीड़े पशु और पक्षी भगवान ने बनाये थे उनके चरित्र के सदृश्यता से नाना प्रकार की कथायें कल्पित करके वेदों में अलंकारों द्वारा उपदेश दिया गया है न कि वह ऐतिहासिक वस्तुओं द्वारा।

'तत्तल्लक्षण कर्मभ्यो गुणादिभ्यः कवीश्वराः ।
तैं शब्दैः कथयन्तिंस्म योनि जायो निजान्तरान् ॥
लोके वैयक्तिकाः शब्दास्तदर्थावेद निर्गता ।
वेद शब्देभ्य एवादौ इत्यादि मनुनास्मृतम् ॥'

=उन लक्षणों और गुणों से कवीश्वरों ने वेद के शब्दों से योनिज और अयोनिज मनुष्यों को कह करके कथायें लिखी हैं लोक में वैयक्तिक शब्द व उनके अर्थ वेद से निकले हैं और वेदों में वह व्यापक अर्थ से हैं। लोक में उदाहरणार्थ व्यक्ति गत व रूढ़ि हो गये हैं तात्पर्य यह है कि वेदों के ही शब्दों द्वारा प्रत्येक पदार्थों के नाम रक्खे गये हैं ऐसा मनुजी का मनुस्मृति में कहना है। जैसे कि कोई नया पदार्थ निकाले तो उसका नाम उन्हीं अक्षरों व शब्दों द्वारा रक्खा जाता है कि जो शब्द व अक्षर अनादि परम्परा से चले आते हैं क्योंकि कोई पदार्थ कभी नाम सहित नहीं निकलता या बनता है।

निष्कर्ष यह है कि वेदों का सम्बन्ध न्यून से न्यून काल मान से मनुष्य सृष्टि के साथ ही साथ है और अधिक से अधिक तो वेद ईश्वरीय ज्ञान है अतः ईश्वर की भांति ईश्वर का ज्ञान भी अनादि व अनन्त है।

ईश्वर

ईश्वर— 'ईष्टे समर्थः सर्वत्र सर्वैश्वर्ययुतः सदा ।
क्वरप् प्रत्ययतः सिद्ध ईश्वरः सर्व कृत्परः ॥'

=संस्कृत में ईश ऐश्वर्य यानी ईश धातु ऐश्वर्य अर्थ में है

जिसका अर्थ सामर्थ्यवान होता है उस धातु से तरप् प्रत्यय होकर ईश्वर शब्द बनता है जिसका अर्थ यह होता है कि जो सदा सर्वत्र सामर्थ्यवान ऐश्वर्य युत सब कुछ करने वाला व सब से परे हो (यानी श्रेष्ठ हो) उसी ईश्वर का बनाया हुआ यह जगत है जो प्राकृत, वैकृत व संस्कृत स्वभाव वाला है अर्थात् संसार में प्रत्येक पदार्थ प्रथम जिस प्रकार पैदा होते व दिखलाई देते हैं वह प्रकार उनका प्राकृत रूप है। उसके आगे सभी पदार्थ उस प्राकृत रूप से दूसरे रूप में प्रायः जाने लगते हैं। वह रूप उनका पहिले से बिगड़ जाता है या दूसरी भांति का हो जाता है तो उसमें से जो पहिले से अधिक मूल्यवान हो जाता है वह संस्कृत रूप है जो बिना किसी संस्कार के हो ही नहीं सकता और जो मूल्य से न्यून व अप्रयोज्य रूप होता है उसे वैकृत (विकृत) रूप कहते हैं।

इन्हीं रूपों में जो संस्कार है वह वेदानुकुल नियम पूर्वक पदार्थ की नियति के साथ संस्कार कहलाता है और उसी को धर्म कहते हैं और वही मनुष्य की मनुष्यता व पुरुषार्थता है इसी से वेदाज्ञा का पालन करना पुरुषार्थता है वह चाहे अपने हितार्थ हो या चाहे संसार भर के हितार्थ हो किन्तु सब के हितार्थ होना वेदाज्ञा है। इसी के अनुकूल या प्रतिकूल चलने को पुण्य व पाप कहते हैं जो दोनों मिलकर कर्म कहलाते हैं जिनका फल अदृष्य व पारलौकिक व चिरकालिक हैं। यह मनुष्य के शरीर की दृष्टि से ही कहे गये हैं और इनका परिणाम जिस

भांति मरने के बाद होता है वह केवल वेदों ही के द्वारा जाना जा सकता है यही वेद की वेदता पहिले कही गई है। वेदों में बतलाया गया है कि समस्त संसार पंच भूतात्मक है (अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश से बनने वाला है) उसमें पृथ्वी जड़ घन आदि गुणवाली है, जल द्रव स्नेह आदि गुण वाला है, तेज प्रकाश व प्रताप आदि गुण वाला है, वायु में चलन चलन आदि स्वतन्त्र गुण हैं, आकाश में सर्वव्यापित्व आदि गुण हैं इन्हीं के अनुसार जड़ प्रकृति वाले प्राकृत मनुष्यों की मरने के बाद पार्थवी गति होती है। अथवा पृथ्वी के बहुत ही लिपटे रहने वाले व नजदीकी कीड़े मकोड़े पशु आदि होते हैं (यानी जड़ प्रकृति वाले होते हैं) और द्रव स्नेह प्रकृति वाले अर्थात् परहित के लिये इष्टवृत्त पूत कर्म करने वाले द्विजातियों की जलीय गति अर्थात् चन्द्रलोक पितृलोक जाने वाली गति होती है और जिनकी प्रकृति तप प्रधान ज्ञान युक्त पर हितार्थ होती है वह चाहे गृहस्थ व वानप्रस्थ हों उनकी गति तैजसी अथवा दैवी होती है जिसे देवयान व ब्रह्म मार्ग कहते हैं।

जिनकी प्रकृति विशेष पुरुपार्थी बल के साथ होती है वह योग द्वारा योगी होते हुए उस स्वतन्त्र गति को पाते हैं कि अपने व्यक्तित्व से चाहे जिस शरीर अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारण के साथ जिस लोकान्तर में चाहें जा सकते हैं और तदनुरूप भोग भी पा सकते हैं। यह वायवीय गति है यह योगियों की ही होती है।

जिनकी प्रकृति सर्व व्यापित्व धर्म की सत्ता के साथ ज्ञान विज्ञान के अनुभव वाली होती है उनकी कैवल्य गति होती है अर्थात् उनका जाना आना कहीं नहीं होता है। वह वहीं के वहीं या सर्वत्र ही व्याप्त परम परमात्म स्वरूप में एकी भूत हो हो जाते हैं।

इन पांचों प्रकार की गतियों का ऐसा ही स्पष्ट उल्लेख सम्भव है वेदों में न देख पड़े किन्तु विचारने से निश्चित हो जाता है। पार्थवीय गति जड़ है इसी लोक की है इससे इसका विशेष वर्णन नहीं है। वायवीय गति स्वतन्त्रता के साथ है इसलिए उसका भी विशेष उल्लेख नहीं है। आकाशीय वास्तव में गति ही नहीं है उसमें आना जाना है ही नहीं इसलिए प्रायः स्पष्ट रूप से देवयान और पितृयान का लेख अधिक मिला करता है। और पहिले की तीन गतियों का यह भी सिद्धान्त है कि शरीर में अभिमान या अध्यास बने रहने से इस शरीर के परमाणु की प्रतीक्षा मरने के बाद पुरुष को बनी रहती है इसी से वैदिक लोग शरीर को जला देते हैं जलाने से परमाणु बहुत शीघ्र विशलिष्ट हो जाते हैं अर्थात् प्रथक प्रथक हो जाते हैं पृथवी के परमाणु भस्म राख और जल के धुँवां और तेज के परमाणु ज्वाला लव के रूप में परिणित हो जाते हैं। भस्म राख एक प्रकार की मिट्टी या पृथ्वी का ही अंश है इसे इसलिये पार्थवी गति कहते हैं।

जलीय व तैजसी मार्गों को क्रम से धूम्र मार्ग व अर्चि मार्ग

कहते हैं। यहां क्रम से पितृयाण व देवयाण है इनका ज्ञान बिना वेद शब्द प्रमाण के पहिले पहिल किसी प्रकार नहीं हो सकता है और इन्हीं के अनुसंधान द्वारा संसार की रक्षा के लिए वेदों में यज्ञों का वर्णन बहुत अधिक है यहां तक की यज्ञ ही वेद का प्रधान व प्राथमिक धर्म है और यज्ञों से ही संसार का संचालन सुचारु रूप से रह सकता है अन्यथा नहीं।

यह विज्ञान भी वैदिक साहित्य में ही पहिले पहिल पाया जाता है। इसी प्रकार और भी व्यष्टि समष्टि सम्बन्धी सम्बन्ध का विषय जैसा वैदिक साहित्य में है वैसा कहीं नहीं है और समस्त वैदिक साहित्य का मूल बीज मंत्र ही माने गये हैं। मंत्र स्वयं प्रमाण भूत व अकाट्य व निर्दोष माने जाते हैं। इनका प्रमाण सभी वैदिक साहित्य में कहीं मन्त्र शब्द से कहीं ऋचा शब्द से कहीं श्लोक शब्द से दिया गया है। इसी से प्रचलित मन्त्र संहिताओं में अब तक कोई पाठान्तर नहीं पाया जाता। जिन २ संहिताओं में पाठान्तर व शब्दान्तर पाये जाते हैं वह शाखा रूप की गणना में माने जाते हैं और वह शाखायें साधारण ११८० कही जाती हैं जैसे कि ऋग्वेद की २१ व किसी के मत से २४ भी हैं। यजुर्वेद की १०१ व १०६ हैं, सामवेद की १००० व अथर्ववेद की कहीं ६ व कहीं १२ कहीं ५० शाखायें हैं। चारों वेदों की संख्या १००००० श्लोक वाली कही जाती है जिसमें ऋक ४००००: यजुर्वेद २००००, सामवेद

२५००० व अथर्ववेद १५००० कहा जाता है। परन्तु यह संख्या ब्राह्मण भाग के मिलाने से ही हो सकती है। मंत्रों की संख्या २०००० से अधिक नहीं है। यह यज्ञोपवीत की निर्माण परम्परा से निश्चय होता है क्यों कि १००००० वाली संख्या में द्विजातियों का यज्ञोपवीत अस्सी से अधिक संख्या का है जिनमें कि मन्त्रों की ही संख्या की प्रधानता है और ८०००० में मतभेद है किसी के मत से ८० चौआ तक यज्ञोपवीत सभी मनुष्य मात्रों को गंडा के रूप में धारण करना पाया जाता है। संभव है कि इसमें बहुत ही मतभेद हो परन्तु साम्प्रदायिक दुराग्रह छोड़कर सत्य व शान्त यथार्थ दृष्टि से मानने पर व विचारने पर केवल मन्त्रों को छोड़कर और सब शेष वेद भाग में मनुष्य मात्र का अधिकार सर्वथा सिद्ध है यों तो आजकल राज्य परम्परा व परिषद् परम्परा के ठीक न रहने से अधिकार की तरफ ध्यान न देने से चाहे जो कुछ हो कहीं तो द्विजाति ही नहीं द्विजातियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण भी मंत्रहीन पाये जाते हैं। और कहीं आर्य शूद्र ही नहीं किन्तु मुसलमान अंग्रेज यहूदी इत्यादि भी वेद पढ़ने वाले पाये जाते हैं। यहां तक कि आज से २५०, ३०० वर्ष पहिले मुसलमान दारा ने उपनिषदों का अनुवाद कराया था और हाल में शोपेनहार जर्मन ने उपनिषदों का ट्रांसलेशन (अनुवाद) किया था उसका तो यह भी कहना था कि जिसे सूक्ष्माति सूक्ष्म पदार्थ विषयों की खोज करना हो वह भारतवर्ष की यात्रा करे क्योंकि भारत ही में वेदज्ञों का प्राचुर्य है।

पश्चिम के प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर ने अंग्रेजी में चारों वेदों का भाष्य लिखा है। हिन्दी में भी कई एक भाष्य लिखे गये हैं परन्तु इस पर भी किसी किसी को आपत्ति है कि विना अधिकार वेद कैसे पढ़े या पढ़ाये जावें।

वेदों की आपस में प्राथमिकत्व

प्रायः जहां जहां वेदों की गणना आई है वहां वहां पहिला नाम ऋग्वेद का ही रक्खा गया है। अर्वाचीन व ऐतिहासिक तथा विदेशी विद्वानों का भी यही मत है कि ऋग्वेद पहिले का है यही पहिले ऋषियों ने कहा था पीछे यजुर्वेद और उसके बाद सामादि हुए। गीता के दशवें अध्याय में 'वेदानाम सामवेदोस्मि' है इसके प्रमाण से सामवेद ही विशेष महत्व का व विभूति वाला है कहीं कहीं अथर्वण की महिमा गाई गई है क्योंकि तुष्टि पुष्टि शान्ति व्यवहार मन्त्र विशेष रूप से उसमें अधिक हैं व आयुर्वेद उसी का उपांग है जिस पर कि मनुष्य जीवन निर्भर है और इसे आंगरिस वेद भी कहते हैं जिसका यह अर्थ है कि अंगिरा के नाम से यह प्रसिद्ध है और अंगों का रस तथा संसार में सबसे बड़ा पदार्थ प्राण कहलाता है इसी की उपासना सब से बड़ी है ऐसा उपनिषद में कहा गया है इसलिये इसे आंगरिस वेद कहते हैं। कोई कोई कर्मकाण्ड को आदि काण्ड मानते हैं और कर्मकाण्ड होने के कारण यजुर्वेद को ही प्रथम का वेद मानते हैं जैसा कि मत्स्यपुराण में लिखा पाया जाता है व लोक में प्रसिद्ध भी है कि जिसका कोई वेद न हो उसका यजुर्वेद मान लिया जावे (यजुस्सर्वत्रगीयेते)

इस प्रकार चारों वेदों की प्रथक प्रथक महत्ता है वस्तुतः वेद जब ईश्वरीय ज्ञान है तब यह युगपत कालीन है यानी सापेक्ष भाव से आगे पीछे का कहना बन ही नहीं सकता है तिस पर भी किसी २ का कहना है कि अथर्ववेद मुसलमानी है न जाने यह धारणा कहां से चल पड़ी है। आजकल के बहुत से ऐतिहासिक लोगों का कहना है कि यह मुसलमानी राज्य काल से किसी विशेष कारण से यह धारणा प्रचलित हुई। वेदों के सम्बन्ध में ऐसी ही बहुत सी बातें कही जाती हैं जो मनगढ़न्त मात्र हैं वेदों की प्राचीनता सर्वमान्य संसार भर में हो चुकी है। इसमें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

मंत्रों में जो ऊपर नीचे पाई व अंक कहीं कहीं पर लिखे रहते हैं उनका विषय शिक्षा अंग से जाना जाता है। उच्चारण के भी कुछ भेद पाये जाते हैं जैसे कि (य) को विशेष स्थलों में (ज), व (ष) को (ख) कहते हैं और अनुस्वार को (ं) श ष स ह और र इनके आगे होने पर (गुं) उच्चारण करते हैं। यह उच्चारण की विशेष विधि भी शिक्षा ग्रन्थों में व प्रातिशाख्य व्याकरणों में अच्छे प्रकार बतलाई गई है।

मंत्रों के अर्थ प्रायः साधारणतया दो प्रकार के होते हैं। एक सर्व व्याप्त जो परमात्मा, परब्रह्म परमेश्वर सब का एकात्मा, तत्परक लगाते हैं यानी उसी की प्रार्थना या उसी का यजन किया जाता है। दूसरे प्रथक प्रथक मंत्रों के प्रथक प्रथक देवता बतलाये गये हैं उनका यजन व उनकी (देवतों की) प्रार्थना है जिसको

जैसा इष्ट हो वह उसी प्रकार समझ ले। सब मन्त्रों के ऋषि छन्द व देवता सर्वानुक्रम सूत्रों के अनुसार यज्ञों व कार्य विशेषों में पढ़े जाते हैं।

इस भूमिका में वेदों का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है उनका विस्तरित विवरण व व्याख्या मन्त्रों व ऋचाओं का अनुवाद करते समय दिये जाने का प्रयत्न किया जावेगा।

॥ इतिशुभम् ॥

परिचय कुछ महानुभावों का जिनकी प्रेरणा व प्रोत्साहन से प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित किया जाता है

श्री हृदयनारायण खन्ना इटावा निवासी एक शान्तिप्रिय कला प्रवीण वस्त्र विक्रेता व निर्माणक ।

श्री मुन्नूलाल जी सेठ प्रयाग निवासी एक धर्म प्रेमी शान्ति प्रिय प्रसिद्ध रामायणभक्त व व्याख्याता ।

श्री फ़क़ीरचन्द जी टण्डन मिर्ज़ापुर निवासी एक धर्मप्रेमी कर्मठ विचारशील सज्जन ।

श्री हरीमोहन जी मालवीय कालपी निवासी एक धर्मप्रेमी सात्विक प्रसिद्ध कर्मकाण्डी व क्षत्रिय कुल आचार्य ।

श्री केशवचन्द्र टण्डन अनुज श्री रूपकिशोर टण्डन स्वकार्य दक्ष गृह निर्माण कला प्रवीण उत्साही सज्जन ।

श्री चन्द्रशेखर जी शुक्ल सत्संग प्रेमी धार्मिक विद्वान ।

श्री लालता प्रसाद जी भार्गव प्रिंसिपल सेन्ट्रल टेक्सटाइल इन्सटीट्यूट कानपुर, वस्त्र निर्माण कला तथा रंग विशेषज्ञ ।

श्री रघुनाथ प्रसाद जी बाजपेयी एक समाजसेवी उत्साही धर्मानुरागी सज्जन ।

श्री शालिग्राम जी टण्डन रिटायर्ड कलक्टर एक विचार वान तत्ववेत्ता अनुभवी विद्वान ।

श्री कालिकाप्रसाद जी भवन प्रबन्धक श्री गयाप्रसाद ट्रस्ट एक विचार शील समाजसेवी अनुभवी सज्जन ।

श्री बद्रीप्रसाद जी कपूर एडवोकेट एक कर्मनिष्ठ विचारवान अनुभवी धर्मपरायण सज्जन ।

श्री शास्त्री गोविन्दराम जी पाण्डेय एवं धार्मिक श्रद्धावान कथावाचक परमट ।

श्री जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल एक सरल स्वभाव निष्ठा-वान धार्मिक सज्जन ।

श्री कृष्णचन्द्र जी खन्ना एम० ए०, एल-एल० बी०, एक धर्मानुरागी सुयोग्य कार्य कुशल सज्जन ।

श्री विशम्भर नाथ जी सेठ एक धर्म प्रेमी निष्ठावान प्रसिद्ध व्यापार व्यवसायी झांसी ।

पुस्तक मिलने का पता

श्री विजयकुमार टंडन
११/३१२ सूटरगंज, कानपुर

श्री रामबख्श सत्संग भवन
५५/६४ शतरंजी मुहाल कानपुर

कुछ अन्य पुस्तकें

श्री ११०८ शंकराचार्यकृत
'पञ्चीकरण (प्राणवार्थ)
मूल्य ॥)

यज्ञोपवीत विज्ञान
मूल्य ।=)

कालपी दिग्दर्शन
मूल्य ॥)